विषय-सूची

भूमिका

मैणवाल के एकांकियों पर एक दृष्टि

[प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र, एम ए , रिसर्च स्कालर, हर्बर्ट कालिज, कोटा]

जीवन का दारुण सत्य और आशा का सन्देश

मैणवालजी मौलिक एकाकी सृजन की प्रतिभा लेकर हिन्दी एकाकी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं। यद्यपि आप पाश्चात्य टेकनिक से प्रभावित हैं, किन्तु आपने अपने पथ का निर्धारण करने में किसी भी पाश्चात्य एकाकीकार का अनुकरण नही किया है। ऐतिहासिक एव पौराणिक एका-कियो में भी आपने निज-कल्पना और प्रतिभा के स्पर्श से नवीनता की सृष्टि की है। आपकी कल्पना और अनुभव के आधार पर खडे होने वाले सामाजिक एव प्रचारात्मक एकाकियो के सम्बन्ध मे तो कोई प्रश्न ही नही उठता। उनका आधार ठोस जीवन है। यहाँ भारतीय जन-समाज के कठोर जीवन की निर्मम झाँकी हमे दी गई है। इन एकाकियो मे जीवन का दारुण सत्य है, साथ ही आशा का सन्देश भी।

'प्रसाद' का प्रभाव

मैणवालजी के प्रारंभिक एकांकियों पर "प्रसाद" का प्रभाव स्पष्ट है। "प्रसाद" की नाट्य-पद्धति की कहानियों के नाटकत्व तथा भाषा की रूपमाधुरी, ज़िन्दादिली, संस्कृति-प्रेम का प्रभाव कहीं-कहीं मुखरित हो गया है। हार्डी (Thomas Hardy) का दुःखवाद कहीं-कहीं आपकी विचारधारा को स्पर्श करता है, किन्तु "प्रसाद"-साहित्य के अनुशीलन की प्रतिक्रिया ने आपको हिन्दी-नाट्य संसार में एक आदर्शोन्मुख आशावादी व्यक्तित्व बना दिया है। यही कारण है कि आपके करुण और दुखान्त एकांकियों में भी आशा की स्वर्ण-रेख चमकती है।

पद्धति एवं टेकनिक

टेकनिक की दृष्टि से मैणवालजी का योग चिरस्मरणीय है। अँग्रेजी पद्धति के अनुसार आप कई दृश्य वाले तथा अधिक पात्रों वाले लम्बे-लम्बे विचार या मत-विशेष के प्रतिपादन से बोझिल एकांकियों की अपेक्षा एक दृश्य तथा कम पात्रों वाले एकांकी लिखना अधिक पसन्द करते हैं। छोटे, किन्तु सम्वेदना की तीव्रता सम्हाले हुए तीखे एकांकियों का निर्माण करना आपकी विशेषता है। आप दो-तीन पात्रों की सहायता से एक ही स्थान पर, उसी समय घटनाओं को जोड़-तोड़ कर चरित्र की किसी विशेष वृत्ति एवं मनो-

दशा का मनोवैज्ञानिक ढग से प्रतिपादन कर देते हैं। ऐसे एकांकीकार को तीव्र सम्वेदना (Acute Sensation) और प्रभाव की ऋजुता का भी पूरा-पूरा ध्यान रहता है; क्योंकि प्रधानत. इन्ही मूल तत्त्वो पर उसकी सफलता या असफलता आँकी जा सकती है।[1]

मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ

मैणवालजी की मनोवृत्ति मनोवैज्ञानिक है। अपने पौराणिक और ऐतिहासिक नाटको में भी कथानक पुराना

---

[1]"मैं उस समय का स्वप्न देखता हूँ, जब भारतवासी बेरोजगार, अकर्मण्य, आलसी नहीं रहेगे। एक दिन भारत रूस और अमेरिका के समान उन्नत और समृद्धिशाली होगा और भारतवासियो को एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलेगा। राष्ट्र के सम्मुख काम ज्यादा होगा तथा मानव कम रहेगे। ऐसे युग में देशवासियों को रामायण, महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ, या लम्बे उपन्यास, नाटक इत्यादि को पढ़ने का समय कहाँ मिलेगा? ऐसे नितान्त व्यावहारिक जीवन को कदाचित् ये कुछ ही क्षणो में मजा-चखाने वाले एकाकी ज्यादा पसन्द होगे। ऐसे भौतिकवादी एव यथार्थवादी जीवन में ये एकांकी अतीत संस्कृति का सन्देश सुनाने में सफल हो सकेंगे। अपने भावी एकांकियों में मैं कुछ ही क्षणों में पूर्ण आनन्द देने का प्रयास करूँगा"—हरिनारायण मैणवाल (पत्र से)

होते हुए भी आपने मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ भर दी है। उनमे नए प्राण आ गये है। मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रसूत "कृष्णवियोगिनी" भावव्यजना तथा शैली में चिर नवीन है। अनुभूति की सूक्ष्मता मार्मिक ढग से व्यक्त हुई है। अनुभूति के भावात्मक होने के कारण कल्पना का सुचारु उपयोग हुआ है। गूढ आत्मानुभूति का करुणात्मक और नाटकीय निवेदन कितना भावमय हो सकता है, इसका सफल प्रमाण "कृष्ण-वियोगिनी" का अन्तिम वक्तव्य है, जहाँ प्रमादनी राधा का चित्रण किया गया है। आपकी केवल अनुभूति ही तरल नही, उसके पीछे बौद्धिक तत्त्व भी है। आपके समस्या नाटको में यह ठोस बौद्धिक तत्त्व नाना रूप ग्रहण कर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। इन नाटकों में आपने समाज के भीतरी पर्व फाड कर दारुण अत्याचार और समाज की भग्न-जीर्ण अट्टालिकाएँ दिखाई है।

"प्रसाद" का प्रभाव दो रूपो मे मूर्त हो उठा है (१) विचारधारा में भारतीय गौरव, सस्कृति एव भावात्मक आदर्शवाद। इन एकाकियो में विचार-गौरव तथा प्राचीन आर्य-संस्कृति के सम्बन्ध मे भावात्मक विवेचना है। नाट्यकार ने भारतीय सस्कृति के प्रतीक सास्कृतिक-पौराणिक कथानको को चुना है।

"प्रतिज्ञा", "शत्रु से प्रेम", "पर्जन्य-यज्ञ", "पितृ-भक्त"—मे प्रसाद के नाटको वाली पद्धति स्पप्ट है।

वही समाज की प्रवृत्तियो का सूक्ष्म निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, सरसता के लिये मधुर गीतो की योजना, सास्कृतिक एव भारतीय हिन्दू इतिहास के कथानक, गुरु-गभीर सस्कृत-मयी भाषा के प्रयोग, स्वगत इत्यादि। सास्कृतिक नाटको में प्रौढता, रस और सगीत का अपूर्व सम्मिश्रण है।

'मैणवाल' की विशेषता

अभी हिन्दी साहित्य में ऐसे एकाकियो की कमी है, जो तीव्र सम्वेदना, (Acute Sensation) प्रभाव की ऋजुता, आकस्मिकता, गोपन-व्यजना आदि कहानी के-से तत्त्वो को रखते हुए केवल एक दृश्य से अधिक की कामना नही रखते। एक दृश्य में ही वे भरपूर और अपने आपमें हर प्रकार पूर्ण होते है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैणवालजी एकाकी-क्षेत्र में अग्रसर हुए है। यही इनकी विशेषता है।

आपके एकाकियो को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है —

(१) सामाजिक-समस्या-एकांकी

(१) सौभाग्य-सिन्दूर (२) मोटर साइकिल (३) गरीव का ससार (४) सहशिक्षा (५) नेताजी और आज़ाद हिन्द फ़ौज (६) गृहस्थी (७) साथी (८) ताड-गुड (९) कौसिलर।

(२) सांस्कृतिक-पौराणिक आदर्शवाद

(१) प्रतिज्ञा (२) शत्रु से प्रेम (३) पर्जन्य यज्ञ (४) गुरु-दक्षिणा (५) पितृ-भक्त (६) कृष्ण-वियोगिनी—

ऐतिहासिक

(१) खुसरू की आँखे।

समस्या-एकांकी

श्री मैणवाल के सामाजिक समस्या-नाटको में नाना समस्याएँ उभारी गई है। निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से वे इनका चित्रण कर देते हैं; समस्या के सुलझाव के सकेत भी कर देते है, किन्तु स्पष्ट नही कहते। समाज का पर्दाफाश कर वे हमे प्रताडित वर्ग की एक झाँकी प्रस्तुत कर देते है, जैसे हमसे कहते हो, "समाज का रुपहला कृत्रिम स्वरूप तो आप देखते ही हैं, युगो-युगों से उसके अन्तराल में संचित इस कड़वाहट और विद्रूपता को भी आपने देखा है?" पूंजीवाद के विरुद्ध आपने आवाज ऊँची की है। आज मध्यवर्ग के करोडो गृहस्थ मँहगाई और झूठा दिखावा की चक्की के दो पाटो मे निर्ममता से पीसे जा रहे है। उनका स्वर आप मुखरित कर सके हैं। समाज मे जो Exploitation, चल रहा है, उसका चित्रण इन एकांकियों मे उपलब्ध है।

जिन समस्याओ को आपने अपने एकाकियो का विषय बनाया है, उनमे से ये प्रमुख है —विधवाओ की दुर्दशा, पूंजीवाद के अत्याचार, किराया, मँहगाई, मध्यवर्ग का उत्पीडन, आधुनिक सहशिक्षा की खराबियाँ, उच्च क्षेत्रो के भ्रष्टाचार, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ की दुर्बलताएँ, गरीबी की असमर्थता, भयकरता, इत्यादि। ऐतिहासिक नाटको मे मुस्लिम सस्कृति तथा मुगल साम्राज्य की समस्याएँ, हिन्दू-मुस्लिम एकता का न होना, मुगलकालीन राजाओ के पारस्परिक विद्वेष-षडयत्र को समझाने का प्रयत्न किया गया है। पौराणिक नाटको मे अतीत भारतीय सास्कृतिक उच्चता की ओजपूर्ण झाँकी प्रस्तुत की गई है। "खुसरू की आँखे" में नाटचकार ने अकबर की वेदनाओ, जटिल समस्याओ, सम्राट के घात-प्रतिघातो को मुखरित किया है।

गृहस्थी

"गृहस्थी" एक प्रगतिशील एकाकी है, जिसमे नाटचकार ने आधुनिक मध्यवर्ग के नौकरी-पेशा के जीवन का एक यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। दिन भर कार्य करने के पश्चात् वह १५०) कमाता है, जिसमे कठिनता से घर का व्यय चलता है। कर्ज बढता है, किराया, दूध के पैसे भी नही दे पाता, धनवान के बच्चे उसके बच्चो को चिढाते

हैं। इस नाटक के रामभरोसे उन मध्यम श्रेणी के गृहस्थों का प्रतिनिधित्व करते है, जो मँहगाई, रिश्तेदारी, बाहरी टीपटाप, अफसरों के अत्याचारों और सामान्य गृहस्थी की जरूरतें भी पूर्ण नही कर पाते। यह मध्यम श्रेणी के एक गृहस्थी का चित्र है।

कुछ समस्याओ की ओर निर्देश निम्न वक्तव्यों में देखिये :—

"यह सन् १९४९ है। एक सामान्य गृहस्थ तलवार की धार पर से गुज़र रहा है। नौकरी बहुत बुरी चीज़ है। धनवान गरीब की सदैव हड्डियाँ चूंसने को प्रस्तुत है, अफसर सदा मातहत का दिल दुखाने में अपना गौरव समझता है।"

"धनवान के बच्चे तक दुष्ट होते है। वे अपनी समृद्धि बता कर गरीब के बालकों को बार-बार चिढ़ाते है। इससे दीन बालको की आत्मा निर्बल हो जाती है, उनका आगे जाकर साहस टूट जाता है।"

गरीबो का रक्त-शोषण करने वालो के विरुद्ध लेखक की पुकार निम्न शब्दो में व्यक्त हुई है —

"जी चाहता है इन भूखे व्याघ्रो की लाशे कर दूं, खून की नदियाँ बहा दूं और अन्त में जेल के सीखचो में बन्द होकर सड-सड़ कर मर जाऊँ या हम सब एक साथ आत्म-हत्या कर ले। पढा-लिखा हूँ, दिमाग रखता हूँ,

शरीर काम करना चाहता है, मरता हूँ, पचता हूँ, पर, फिर भी पेट खाली है। वालक विलख कर रह जाते है, स्त्री मन मार कर पत्थर-सी हो गई है और जीवन निरस है। फिर, ऐसे जीवन से कौन-सा लाभ होगा ?

सहशिक्षा

"आधुनिक सहशिक्षा" मे वयस्क लडके-लडकियो की सहशिक्षा के प्रश्न को उठाया गया है। प्राय छोटी-छोटी वातो पर लडके-लडकियो मे कटुता और मघर्ष चलता है। लडकियाँ छोटी-छोटी वातो की शिकायते करती है। भारत मे लडके और लडकियो के इस सघर्प की समस्या का हल नाटचकार ने इन शब्दो मे किया है —

"भारतीय लडकियाँ सहशिक्षा के अयोग्य है। सहशिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की एक देन है। जव तक लडकियाँ पाश्चात्य महिलाओ की तरह झूठी लज्जा को त्याग कर स्वय को निडर नही वनी लेगी, तव तक सहशिक्षा का सफल होना कठिन ही नही असभव है . स्त्री-पुरुप का भेद भूल कर लडकियो को लड़को के वातावरण मे घुल जाना चाहिए।

"सुन्दर एव अप्राप्य वस्तु मे आकर्षण होता है, किन्तु जव वह वस्तु सदा समीप रहने लगती है, तो आकर्पण की वह तीव्र मात्रा क्रमश स्वत ही मिट जाती है। दूसरा

प्रभाव चरित्र एव व्यक्तित्व का पड़ता है, जिसकी क्षमता के विरुद्ध पुरुष तो क्या देवता भी नही ठहर सकते। सीता के पावन चरित्र ने रावण की पापात्मा को परास्त किया; इसी प्रकार सावित्री, द्रोपदी और पद्मिनी आदि भारतीय ललनाओ ने अपनी पवित्र चरित्र-शक्ति के परिचय दिये है. . . .।"

नाटयकार का उद्देश्य यही हृदय-परिवर्तन दिखाना है। जव तक लड़के लड़कियों का हृदय-परिवर्तन नही होता, तव तक यह समस्या नही सुलझ सकती। यदि लडकियाँ चाहती हैं कि वे लडको के साथ वैठ कर शिक्षा प्राप्त करें, तो उन्हे प्रथम स्वयं को सहशिक्षा के योग्य वनाना होगा।

साथी

"साथी" (१९५०) में जेल की चारदीवारी के अन्दर होने वाले अत्याचार के साथ दो कैदियो की आप-वीती, भारत के १९४९-५० के राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक वातावरण को चित्रित किया है। दो कैदी, एक स्त्री, दूसरा पुरुष, जेल की चार दीवारी के भीतर ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, प्रेम का अंकुर फूटता है, किन्तु क्रूर जेलर द्वारा कुचल दिया जाता है। इस एकाकी का नायक एक राजद्रोही है। उसके कैद होने का कारण उसी से सुनिये। भारत को आज़ादी मिलने के वाद की राजनैतिक अवस्था का इससे सही अनुमान हो सकता है:—

"साथी—भूल से समझ बैठा था कि आज़ादी मिल गई है। विचार-स्वतन्त्रता और सत्य की बेड़ियाँ काट कर गरीबों की आवाज़ बुलन्द करने लगा। हड़तालें हुईं, मिल ठप्प थीं, रेलों के चक्के जाम हो गये और जनता की बुलन्द आवाज़ से आकाश फटने लगा। अवसरवादी सफेदपोश घबरा उठे, उनकी कुर्सियाँ उलटने लगीं। और, मोटे पेट का पानी सूखने लगा। बस, फिर क्या था, अँग्रेज़ों जैसा दमन-चक्र चला, विचार-स्वतन्त्रता का गला घोट दिया गया और सत्य के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों मे बेड़ियाँ डाल दी गईं। मैं एक भयंकर राजद्रोही हूँ।"

ताड़-गुड़

"ताड-गुड" (१९५०) प्रचार की चीज़ है, जिसमें ताड़-गुड की उपयोगिता, महत्त्व, लाभों को नाटकत्व प्रदान कर दिया गया है। इसका प्रधान पात्र सम्पादक कहता है—

"ताड-गुड-उद्योग अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन का सहायक है। गन्ने की काश्त पर ताड-गुड उद्योग का सीधा प्रभाव यह पड़ेगा कि किसान खेतों में गन्ना बोने के

-बजाय, अन्न उत्पन्न करेंगे, क्यो कि आजकल हज़ारो एकड़
उपजाऊ ज़मीन गन्ने की काश्त ही घेर लेती है। ज्यो-ज्यों
ताड़-गुड उद्योग बढ़ेगा, त्यो-त्यो गन्ने की काश्त घटेगी
और ज्यादा अन्न उत्पन्न होगा .. गन्ने के उगाने में,
सींचने मे, काटने मे, पेलने में और रक्षा करने मे बीसों
-झंझट करने पड़ते है। वह तो किसान के खून का पानी बना
देता है, पर खजूर के पेड लाखो की सख्या में खडे है . .
ये खजूर के वृक्ष राजस्थान की मरुभूमि मे अमृत देगे।"

इस एकाकी मे योजनाओ की सफलता अच्छे कार्य-
कर्ताओ के ऊपर निर्भर है, इस तत्त्व को स्पष्ट कर दिया
गया है।

कौंसिलर

"कौसिलर" मे एक आदर्शवादी नवयुवक म्यूनिसिपल
कौंसिलर का चित्र है। म्यूनिसिपैलिटी मे जो रिश्वत,
अत्याचार और लूटने का वातावरण रहता है, उसका
चित्रण करना लेखक का उद्देश्य है। इसमे पं० विश्वेश्वर
के रूप में जन-सेवक के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है।
वह त्यागमय होकर आदर्श हो गया है। इसमे हम उनके
चरित्र की निष्ठा, बलिदान, सचाई और कठिनाइयों,
परिस्थितियो की भीषणता देखते हैं। पं० विश्वेश्वर
-रिश्वतो के प्रलोभनो से बचते हुए त्याग और जन-सेवा

के मार्ग पर अटल बने रहते है। यह चित्र कर्तृत्व की प्रेरणा के लिए चित्रित किया गया है। यथार्थवादी आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है। यही प्रवृत्ति विश्वेश्वर के समस्त वक्तव्यो में परिलक्षित होती है —जैसे—

"क्या आप चाहते है कि मै अपना ईमान कुछ चाँदी के टुकड़ो में बेच दूं, जिनकी सेवा करने को खडा हुआ हूँ, उन पर ही जुर्म करूँ और अपने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को धोखा देने लगूं। सचाई और ईमान पर चलने वालो की दशा तो सदा खराब रहती है, पर उनका सिर सदा ऊँचा रहता है। यदि परिस्थिति को अपने अनुकूल न बना सका, तो मै इस क्षेत्र से दूर हो जाऊँगा। पर, मुझे पूरा भरोसा है कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी।"

मै अपना कर्त्तव्य-पालन कर रहा हूँ और भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे है। सच्चे लोक-सेवकों, निस्वार्थी कार्यकर्त्ताओ और होनहार लेखको के मूल्य को अभी हमारे राष्ट्र ने नही पहिचाना है।"

घर-गृहस्थी तथा ससार की विषमताओ में पिसता हुआ भी विश्वेश्वर अपने आदर्श के लिए युद्ध करता है। उसका आदर्शवाद यथार्थवाद के भीतर से ही पनपता है। अवसाद के साथ ही आशा की एक पतली रेखा उसके जीवन-दर्शन में वर्तमान है।

गरीब का संसार

"गरीब का संसार" में एक निर्धन आत्म-सम्मानी विद्यार्थी के बलिदान, हृदयहीनता, और अवसाद-पूर्ण क्षणो की एक झाँकी है। दीनानाथ के ये शब्द कितने भव्य हैं—

"मैं गरीब अवश्य हूँ, परन्तु गरीब की आत्मा पूंजीपतियों की आत्मा से अधिक बलवान होती है। इस प्रकार शिक्षा के आधार पर मैं दीनता से कब तक युद्ध करता रहूँगा ? मैंने अपने स्वाभिमान को अभी नही बेचा है।"

गरीबी की चक्की मे दीनानाथ और उसकी माँ पिस जाते है, लक्ष्मी के पुजारी उनकी पतितावस्था पर हँसी करते है, उन्हें घृणा की वस्तु समझते है। गरीबो की हड्डियाँ चूसने वाले हृदयहीनो का बडा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। पूंजीवाद के विरुद्ध नाटयकार के हृदयमें जो अग्नि है, वह यहाँ सुलग उठी है।

सौभाग्य-सिन्दूर

"सौभाग्य-सिन्दूर" हिन्दू समाज में विधवा की पतितावस्था पर आधारित है। वैधव्य जीवन किस प्रकार अभिशाप बन जाता है; प्रकृति आकर्षण की ओर खीचती है, मन में रस का उफान रहता है, किन्तु यह सब हृदय ही हृदय में कुचला जाने के लिए होता है। विधवा की

अवसादपूर्ण गाथा इस एकाकी में भर दी गई है। लोक-समाज की आलोचना की पद्धति का भी इसमें चित्रण किया गया है।

निष्पक्ष सामाजिक आलोचना

मैंणवालजी ने समाज के गलित अगो की ओर सफलता-पूर्वक निर्देश किया है। आप सामाजिक विद्रूपताओ की ओर निर्देश भर कर देते है। सामाजिक विषमताओ का यथातथ्य वर्णन उनके साहित्य मे मिलता है। उनमे जोला और गाल्सवर्दी जैसी तटस्थता है। उनका अनुवीक्षण तीव्र और पारदर्शी है—बाहर की तहो को बीधता हुआ, वह उस मर्म पर आघात करता है, जहाँ विनाश और पतन के कीटाणु समाज की जड काटने पर तुले हुए हैं। मैणवाल का यथार्थवाद उनकी बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है।

मौलिक एकांकीकार

अपने पौराणिक एकाकियो में भी मैणवालजी ने मौलिकता का समावेश किया है। "कृष्ण-वियोगिनी" की नायिका, राधा वियोग की अग्नि में जलने वाली निश्चेष्ट स्त्री न होकर लोकसेवा में तत्पर उत्साही कर्ममार्गिनी है। उसका एक वक्तव्य देखिये —

राधा—"अरी गोपियो, यहाँ बैठी-बैठी क्यो ऊँघ रही हो? देखती नही ····ब्रज का सारा गोधन जगल

में बिखर चुका है—पशुओं की रक्षा करना है। ललिता, तुम तीनों गौवन को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं बिखरे हुए पशुओ को जंगल से ढूंढ कर लाती हूँ। जब व्रजबालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूल कर लोकसेवा में जुट जाँयगी, तब व्रज के उत्साह-हीन ग्वालबाल और किसानो के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयो मे स्फूर्ति आ जायगी—वे अपने हल और बैलो को सम्हाल लेंगे—व्रज पुन. हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा....व्रज की सुरक्षा के लिए मेरे समान समस्त व्रजवासियों को कृष्ण बनना ही होगा।"

प्राचीन कथानकों की यह नवीन व्याख्या अभूतपूर्व है। हिन्दी मे ये व्याख्याएँ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होती रही। मैणवालजी ने युग की बढती हुई बौद्धिकता का परिचय दिया है।

नाटकीय स्थिति की पकड़

टेकनिक की दृष्टि से मैणवालजी की विशेषता नाटकीय स्थिति (Dramatic Situation) की पकड है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याओ का चित्रण करते हुए आप ऐसी स्थिति का चुनाव करते है, जिसमें दर्शक और पाठक की समस्त मनोवृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती है। कथानक के प्रदर्शन में कौतूहल को विशेष स्थान दिया जाता है।

कथोपकथन

कथोपकथन दो प्रकार के है। पौराणिक-सास्कृतिक नाटको के कथोपकथन गभीर, साहित्यिक और भावुकता से स्निग्ध है। इनमें कल्पना की रगीनी और विषय गौरव है; बुद्धि-व्यापार से अधिक विमुग्धता है। विषाद, अवसाद और क्रोध के स्थल भी बडे तीखे और मर्मस्पर्शी है, जैसे—
राक्षस—

राक्षस—"इसका परिणाम उसको भोगना ही पडेगा। समस्त पचनद पदाक्रान्त होगा। यवन विजय-पताका भारत के वक्षस्थल पर मँडरायगी। यवन-कोष भारतीय श्री से सुशोभित होगा। रक्तपात और अन्याय होगे। सीमान्त आर्यावर्त के पश्चिमी मडल सदैव के लिए अशक्त और निर्बल हो जाँयगे।"

—प्रतिज्ञा

कही-कही अप्रस्तुत योजना का आधार प्रकृति के मनोमुग्धकारी स्वरूप को बनाया गया है। मूल विषय के वेग को प्रकट करने के लिए अप्रस्तुत प्राकृतिक व्यापारो का भी सम्मिश्रित वर्णन है, जैसे—

आचार्य—"राजन्, विलम्ब के लिए समय नही है। बलिदान हो, जिसके फलस्वरूप यज्ञकुंड में से छोटे-छोटे

स्फुलिंग उड-उड़ कर संध्या की लालिमा में आर्य-गौरव की लालिमा को मिला कर उसकी सौन्दर्य-श्री को द्विगणित कर दे। भगवान् भास्कर में इसी वीर की प्रतिभा प्रवेश कर उसकी रश्मिमाला को अधिक स्वर्णिम बना देगी, वह अखिल जगत् की कान्ति होगी।"

एक वक्तव्य में गद्यकाव्य का माधुर्य देखिये—

"यौवन वसन्त की फुलवारी है—एक लहर है, जो निरन्तर नही बहती। पुष्पो के लिए बार-बार वसन्त आता है, समुद्र में लहरे उठती ही रहती है, किन्तु जीवन-सागर में यौवन की हिलोर केवल एक बार आती है। इसके पश्चात् वृद्धा अवस्था का पदार्पण होता है। पतझड की तरह आशाओं का सुरम्य उद्यान शुष्क हो जाता है, उत्साह की तरंग सदैव के लिए मिट जाती है; सौन्दर्य एवं युवावस्था के सुनहरी स्वप्न केवल स्वप्नमात्र रह जाते है, सब अपने पराये हो जाते है, शिथिलता एवं निराशा का एक साथ आक्रमण होता है, फूल की विपिन्नावस्था को देखकर भ्रमर-वृन्द व्यग्य और घृणा करते है और केवल शेष रह जाती है, पल्लवविहीन वृक्ष के सदृश्य यह ककाल-सी देह। बोलो, नियति ने तुम्हे यौवन का उपहार दिया है, उसका तिरस्कार करोगी ?"

—शत्रु से प्रेम

रस, भाषा और चरित्र

सामाजिक समस्याप्रधान नाटको की भाषा सरल, नित्य के व्यवहार मे आने वाली, आडम्बरविहीन सीधी-सादी है। कथोपकथन सक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाक्वैदग्ध्ययुक्त और पात्रो की चारित्रिकता प्रकट करने वाले है। अकबर के द्वारा भी ऐसी भाषा का व्यवहार कराया गया है, जो हिन्दुओ के सम्पर्क मे आकर वह बोल सकता था। यदि अकबर मस्तक पर हिन्दुओ का तिलक लगा सकता है और सूर्य का पूजन कर सकता है, तो वह हिन्दी भी अच्छी बोल सकता है।

"प्रसाद" से प्रभावित पौराणिक-सास्कृतिक एकाकियो में गानो का भी प्रयोग है। ये गाने सक्षिप्त है। एकाकियो के छोटे कलेवर के अनुसार इन्हे छोटा रक्खा गया है। इनसे एकाकी के वातावरण में रस सृष्टि की गई है।

मैंणवालजी यथार्थवादी एकाकीकार है, जिनका यथार्थ-वाद मनुष्य की सहज बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है। रोमास और झूठी भावुकता के लिए यहाँ कोई स्थान नही। पश्चिम के एकाकियो से जो बौद्धिक उत्तेजना हिन्दी में आई है, उसका प्रभाव इनके सामाजिक एकाकियो पर अस्वीकार नही किया जा सकता।

शॉ का प्रभाव इन नाटको पर कई रूपो में पडा है। प्रथम ये नाटक घटना-बहुल या पात्र-बहुल न होकर विचार

श्रौर समस्या नाट्य हैं। ये बौद्धिक चिंतन के मथन हैं। द्वितीय, उनकी शैली (पौराणिक नाटकों को छोड़ कर) यथार्थवाद की है। शॉ की भाँति कहीं-कहीं व्यंग्य श्रौर विदग्धता भी है। सामाजिक नाटक श्राधुनिक समस्याश्रों के प्रतिविम्ब हैं। उनकी स्वाभाविकता श्रौर यथार्थवाद हमारे हृदय को स्पर्श करते हैं।

श्रापके एकाकी श्रनेक दृश्यों से बोझिल न होकर एक बड़े दृश्य में ही सब कुछ प्रस्तुत कर देते हैं। इनमें तीव्र सम्वेदना द्वारा प्रभाव में पूर्ण ऋजुता की सृष्टि की गई है। कई दृश्य वाले तथा श्रधिक पात्रो वाले लम्बे एकांकियों से प्रारम्भ कर मैंणवालजी ने श्रपनी एकाकी-कला का विकास कर एक दृश्य वाले छोटे-छोटे मौलिक एकांकियो की सृष्टि की है। छोटे, मनोवैज्ञानिक श्रौर चरित्र-चित्रण-प्रधान नाटकों की सृष्टि इनकी विशेषता है।

नेताजी और
आज़ाद हिन्द फ़ौज

पात्र-परिचय

१. नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	(भारत के एक प्रसिद्ध नेता जिन्होंने आज़ाद हिन्द फौज का सगठन कर अँग्रेज़ो से युद्ध किया)।
२. बंगाली कप्तान	(आज़ाद हिन्द फौज का एक सेनानायक)
३. पंजाबी कप्तान	(„ „)
४. मेजर	(एक अग्रेज़ी सेनापति)
५. केप्टेन	(सरकारी फौज का एक हिन्दुस्थानी सेनानायक)

नेताजी और आज़ाद हिन्द फ़ौज

प्रथम दृश्य

[आसाम की घनी पहाड़ियो की डरावनी घाटियो में आधुनिक ढंग का एक सैनिक शिविर खड़ा है। शिविर में एक अधेड़ अंग्रेज मेजर अपनी टेविल पर रक्खे हुए युद्ध के नक़शो को झुक कर ध्यान से देख रहा है । सहसा एक गोरे अंग्रेज सैनिक के प्रवेश ने मेजर का ध्यान भंग किया। गोरा सैनिक हाँप रहा है। उसने मेजर को सैनिक ढंग से सलाम की]।

गोरा सैनिक—(घबराहट से) क्या मै भीतर आ सकता हूँ ?

मेजर—कौन ? (नक़शे को बन्द करते हुए) तुम आ गए ! मै तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अरे ! तुम इतने घवरा क्यो रहे हो ? क्या किसी जापानी से मुठभेड हो गई ?

गोरा सैनिक—महाशय ! इस वार किसी जापानी से नही, एक महान् हिन्दुस्थानी से मुठभेड़ होने जा रही है।

मेजर—एक हिन्दुस्थानी से ! यह तुम क्या कह रहे हो ?

गौरा सैनिक—मैं जो कुछ अर्ज़ कर रहा हूँ, वह ठीक है। हम एक ऐसे देशभक्त से लोहा लेने जा रहे हैं, जो सहस्रों जर्मनी और जापानियो से भी अधिक भयकर है।

मेजर—ठीक है, मैं समझ गया। परन्तु, इस बात का पता हिन्दुस्थानी सैनिकों को नही लगना चाहिए। वास्तव में वृटिश-साम्राज्य पर एक महान् सकट आ गया है। जाति और साम्राज्य की सेवा करने का यही अवसर है। शाबाश ! तुमने मुझे समय रहते सचेत कर दिया। जाओ, केप्टेन को शीघ्र मेरे पास भेजो। [गोरा सैनिक सैनिक ढंग से सलाम करके जाता है और सिगार का कस लगाता हुआ मेजर शिविर में इधर-उधर विचार-मग्न होकर टहलने लगता है। थोड़ी देर बाद एक भारतीय युवक तन कर मेजर के सामने आ खड़ा होता है]

मेजर—देखो केप्टेन ! यह मौका हाथ से न जाने पावे। इस बार तुमको जापान के एक बहुत खतरनाक अफसर का सामना करना पडेगा। जापान के इने-गिने अफसरो मे इसकी गिनती है और खास तौर से इस मोर्चे पर लड़ने के लिए यह आया है।

[अँग्रेज मेजर सिगार के बहाने रुक कर हिन्दुस्थानी केप्टेन के चेहरे की ओर देखने लगता है। केप्टन के मुख

पर सहसा लाली दौड़ती हुई दिखाई पड़ती है और चेहरा तमतमा उठता है]

केप्टेन—अफसर ! एक खतरनाक जापानी अफसर ! !

मेजर—हाँ, इस बार जापानी हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे है। यूँ तो मै तुम लोगो से लडने को न कहता, क्योकि जापानियो का साथ कुछ हिन्दुस्तानी सैनिक भी दे रहे हैं। परन्तु, तुम सोचो कि वह एक जापानी अफसर के मातहत लड रहे हैं। जापानियो ने कुछ चाँदी के टुकड़े देकर उनको अपनी ओर मिला लिया है। हम तो केवल यह चाहते है कि उस खतरनाक जापानी अफसर को तुम जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाओ। बस, हम लोगो का काम समाप्त हो जायगा।

[केप्टेन झुक कर अपने सीने पर लगे हुए स्टार को देखता है और कन्धे पर के यूनियन जैक के बैज को हाथ से सम्भालने लगता है और सहसा एक कोई गम्भीर दृढ़ निश्चय भाल पर दिखाई पड़ता है और दूसरे ही क्षण वह छाया की तरह विलीन हो जाता है]।

मेजर—(दूसरी सिगार सुलगाते हुए) तुम्हारी कौम कितनी बहादुर और कितनी स्वाभिमानिनी है, केप्टेन ? वैसे मै इस मोर्चे पर तुमसे लडने को न कहता, परन्तु समय बहुत कम है और थोड़ी भी देर की तो, वह जापानी अफसर और उसके साथी हिन्दुस्तान की सीमा में घुस जायंगे। क्या

तुम यह सहन करोगे कि तुम्हारे जीवित रहते कोई भी जापानी तुम्हारी मातृभूमि पर अपने नापाक कदम रक्खे ?

कैप्टेन—(जोश से दृढ़ स्वर में) नही, कभी नही ! ! हमारे जीवित रहते ऐसा कदापि नही होगा। कल प्रात.काल हमारा आक्रमण होगा।

मेजर—ईश्वर तुम्हे शक्ति दे ! धन्यवाद। [कैप्टेन सैनिक अभिवादन करता हुआ शिविर से प्रस्थान करता है]।

द्वितीय-दृश्य

[स्थान—युद्धस्थल। समय—प्रात काल । अँग्रजों के मातहत लड़नेवाले हिन्दुस्थान के सैनिकों ने आजाद हिन्द फ़ौज को चारों ओर से घेर लिया है। घोर संग्राम हो रहा है और आजाद हिन्द फौज के सैनिक प्राणों का मोह त्याग कर अपने आपको स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर होम रहे हैं। बीच के एक बड़े से तम्बू के सामने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस व्यस्त और व्यग्र मुद्रा में खड़े हैं। उनके सम्मुख दो कप्तान उपस्थित हैं। उनमें से एक दुबला-पतला लम्बा-सा बंगाली है, जिसके चेहरे से एक गहरी वेदना और भावुकता टपक रही है, दूसरा है स्वस्थ पंजाबी, जिसके चेहरे पर स्वाभिमान स्पष्ट झलक रहा है]

बंगाली कप्तान—(टूटे हुए घेरे और क्षण-क्षण पर समीप आते हुए शत्रुओ को देख कर) मैने पहले ही कहा था नेताजी, आप स्वय मोर्चे पर रह कर खतरा न उठाइए, अब क्या होगा ? वायुयान केवल एक है, पेट्रोल भी समाप्त है। ओह ! नेताजी, अब भी मान जाइए, आप पर कोई भी खतरा आ गया तो क्या होगा ?

[नेताजी क्षण भर बंगाली कप्तान के भावुक चेहरे की ओर ध्यान से देखते है और मुस्कराने लगते हैं]

बंगाली कप्तान—नही, मुस्कराने की बात नही है। आपको अपनी जान से खेल करने का कोई अधिकार नही है—आपके प्राण अब स्वतन्त्रता की स्वाँस बन गए है। आपके अमूल्य जीवन के साथ ही देश के भाग्य का भी सदैव के लिए निर्णय होने जा रहा है। (नेताजी कुछ कहना ही चाहते हैं कि मुसलमान कप्तान बोल उठता है)

पजाबी कप्तान—और देखो, इस कम्बख्त कौम की नमक हलाली ! मौत की हद पारकर नेताजी यहाँ जान लडाकर उनकी आज़ादी के लिए लड रहे है और ये बदनसीब हिन्दुस्तानी खुद हमारे खून के प्यासे बन रहे है। भाई-भाई का खून बहा रहा है। खुद हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तान को गुलामी की जजीरो से जकडने पर तुले हुए है। आज़ाद हिन्द फौज को आज हिन्दुस्तानी ही मिटाने को तय्यार है। वाह रे हिन्दुस्तान !

[लड़ाई का शोर बढ़ता है और दूर पर फटते हुए ग्रेनेडो के टुकड़े कभी-कभी दो एक गज की दूरी पर गिरते हैं। बंगाली कप्तान चारों ओर देखता है और चिन्तातुर नेत्रों से सुभाष की ओर देखने लगता है। नेताजी स्वयं उन चिन्तातुर नेत्रों के स्नेह के अनुमान से काँप उठते हैं। पंजाबी कप्तान आगे बढ़ता है और ग्रेनेड का एक टुकड़ा उठा कर वापस आता है।]

पंजाबी कप्तान—और···और नेताजी, आप यकीन कर सकते हैं, यह हिन्दुस्तानियों के हाथों का फेंका हुआ है। कम्बख्त, नामर्द।

नेताजी—ठहरो ! अपनी कौम के विरुद्ध में इतने कठोर शब्द नहीं सुन सकता। मैं घृणा भी करता हूँ, किन्तु प्रेम के लिए, समझे। उनके सीने में भी हिन्दुस्तानी दिल धड़कता है। यही कारण है कि वे हम लोगों के रक्त के प्यासे बन गए हैं।

पंजाबी कप्तान—आपका यह प्रेम मेरी समझ में नहीं आ रहा है ?

बंगाली कप्तान—खैर, लेकिन, यह बताइए, आप निकलेंगे किस तरह ? इस घेरे से बाहर लाखों हिन्दुस्तानी आपकी अपलक प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सरकारी सेना समीप आ रही है और यदि आप पकड़ लिए गए, तो सारा

विद्रोह मर जायगा और हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता एक लम्बी अवधि तक खतरे में पड जायगी।

[नेताजी क्षण भर सोचते है और दूसरे ही क्षण उनके मुख पर बिजली-सी चमक उठती है]

नेताजी—ड्राइवर ! मोटर तय्यार करो। मै सरकारी फौजो को चीरता हुआ बाहर जाऊँगा।

बंगाली कप्तान—अरे !

(सब के मुँह से एक चीख निकल पड़ती है और सब स्तम्भित हो जाते हैं)

पंजाबी कप्तान—उन कतारो को चीर कर, जहाँ ज़हरीली गोलियाँ तैर रही है, कदम-कदम पर ग्रेनेड बिछे है और उनको चीर कर नेताजी जायँगे !

सब मिलकर—(एक स्वर में) नही, हम यह खतरा नही उठाने देंगे।

नेताजी—(हँस कर और फिर सहसा गंभीर होकर) खतरा ! खतरों का तो मै आदी हो गया हूँ।

एक आवाज़—आप शत्रुओ के बीच मे अकेले नही जा सकते। हम नही जाने देंगे।

नेताजी—शत्रु ! वे सब भारतीय है। हमारे भाई है। उन्हे शायद यह मालूम नही है कि मै यहाँ हूँ और आप सब मेरे साथ उनकी स्वतन्त्रता के लिए लड रहे है। विश्वास रखिए, मै पहली दृष्टि में ही उनके हृदयो पर अधि-

कार कर लूँगा। भारतीय रक्त अभी इतना पतला नहीं है कि सच्चे बलिदान का मूल्य भी न आँक सके।

(नेताजी उछल कर लारी पर बैठते हैं और उनके साथ ही बंगाली कप्तान चढ़ता है और पंजाबी कप्तान चढ़नेका प्रयत्न करता है)।

नेताजी—मैं समझता हूँ कि तुम्हारा फ़ौज के साथ ही रहना ठीक है।

पंजाबी कप्तान—क्या आप चाहते हैं कि मै आपका साथ छोड़ कर अपने खुदा को धोखा दूँ, अपने ईमान से गिर जाऊँ।

नेताजी चुप हो जाते हैं और पंजाबी कप्तान मोटर पर सवार हो जाता है, परन्तु ड्राइवर हिचकिचाता है।

ड्राइवर—नेताजी ! मुझे अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं, परन्तु आपका जीवन बहुत कीमती है, यदि कोई भी गोली . .।

नेताजी—गोली ! (हँसकर) अभी अँग्रेजों ने वह गोली नहीं बनाई, जो मेरे सीने को पार कर सके। समझे ! चलो, छोड़ दो फुल स्पीड पर। चाहे मोटर चूर-चूर हो जाय, पर तुम ब्रेक मत लगाना, चलो।

दृश्य-परिवर्तन

तृतीय-दृश्य

(अग्निवाण की तरह मोटर पलभर में शत्रुओ की क़तारो में पहुँचती है। विरोधी सैनिक उसे घेरने दौडते है, लारी उछल कर पांच लाशो को कुचलती हुई आगे वढती है)।

सरकारी कप्तान—देखते क्या हो, टायरो मे गोली मार दो।

(दूसरे ही क्षण पिछले टायर को दो-तीन सनसनाती हुई गोलियाँ चीरती हुई निकलती है। लारी में एक भारी हचका लगता है और वह खड़-खड़ाती हुई आगे वढती है। दूसरे ही क्षण लारी के शीशे पर गोलियाँ तड़कती हैं—एक गोली आगे के शीशेमें लगती है, जिसके परिणाम-स्वरूप शीशे का एक नुकीला टुकड़ा ड्राइवर के चश्मे को तोड़ता हुआ उसकी आँख में घुस जाता है। वह वेसुध होकर एक ओर लुढकता है। नेताजी उछल कर चक्का अपने हाथ में लेते है, परन्तु एकाएक दूसरी गोली शीशे के दूसरे टुकड़े को तोडती है। अर्द्धमूर्छित ड्राइवर चौंक कर उस शीशे के वार को अपने हाथो पर लेता है और उसकी हथेलियाँ लोहूलुहान हो जाती है। नेताजी रोमाचित हो जाते है]।

नेताजी—(भरे हुए कंठ से) मेरे वहादुर वच्चे!

[बंगाली कप्तान उत्तेजित होकर खड़ा होता है। उसके खड़े होते ही एक गोली उड़ती हुई उसकी पसलियों को तोड़ कर निकलती है। उछलता है और एक चीख सुनाई पड़ती है। लारी की भयंकर तूफानी गति के कारण उसकी लाश डगमगाती हुई चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ती है]

पंजाबी कप्तान—(लाल नेत्र करके) वह हिन्दुस्तानियों की गोली से मरा है। अब मैं नहीं रुकूंगा। अच्छा, अलविदा, नेताजी ! खुदा हाफ़िज़। (एक क्षण में लारी से नीचे कूदता है, चक्कर खा कर गिरता है और दौड़ कर साथी की लाश पर जा खड़ा होता है। रिवाल्वर फेंक कर ऊँचे हाथ करता है)।

सरकारी कप्तान—पकड़ लो, इस जापानी चूहे को।

पंजाबी कप्तान—वह कौन हिन्दुस्तानी है, जिसने एक हिन्दुस्तानी के सीने पर गोली चलाई है? (सब स्तम्भित-से हो जाते हैं)

एक सैनिक—(आगे बढ़ कर) ठहरो, यह जापानी अफसर नहीं है, यह तो एक हिन्दुस्तानी है।

सरकारी कप्तान—घेर लो इसे। (सैकड़ों सैनिक पंजाबी कप्तान को घेर लेते हैं और रिवाल्वर तान कर खड़े हो जाते हैं) कहाँ है वह जापानी ?

पंजाबी कप्तान—कौन जापानी ? (सक्रोध) तुम

जानते हो आज तुमने नेताजी पर गोलियाँ चलाई है। क्या तुम इतने कमीने हो गए हो कि चाँदी के टुकडो के लिए नेताजी की लाश अँग्रेज़ो को सौपने के लिए तैयार हो ? क्या तुम इतने गद्दार हो गए कि देश की आज़ादी को कौड़ियो मे बेचना चाहते हो ?

[चारों ओर तने हुए रिवाल्वर झुक जाते है, दृष्टियाँ नीची गड़ जाती है और चेहरो पर शर्म छा जाती है। पठान कप्तान क्रोध से काँपता है। वह झुक कर बंगाली की लाश की पसली से बहता हुआ ख़ून अपने हाथ में उठाता है) ।

सरकारी कप्तान—तुम क्या चाहते हो ?

पंजाबी कप्तान—यह पसली, यह पसली तुम्हारी गोलियो से टूटी है, यह ख़ून तुम्हारा बहाया हुआ है। लो, अगर चाँदी के टुकडो को गद्दारी से पाने के बाद भी तुम्हारी प्यास नही बुझी, तो ख़ुशी से अपने देश-भाइयो के ख़ून से तुम अपनी प्यास बुझाओ। लो, खामोश क्यो खड़े हो ? मारो, अपने वतन के लिए मर मिटने वाले शहीदो को। तानो रिवाल्वर।

[आवेश में आकर बंगाली के ख़ून के छींटे उन पर उछालता है। ख़ून के छींटे लगते ही उनके मुर्दा दिलो में जोश उमड़ पड़ता है]।

सरकारी कप्तान—हमें धोखा हुआ। हम से नेताजी

की उपस्थिति छिपाई गई थी। हमको एक जापानी अफसर से लड़ने के लिए कहा गया।

कई आवाजें—'हम इसका वदला लेंगे।'

सरकारी कप्तान—हाँ, हम इसका वदला लेंगे।

पंजाबी कप्तान—जय हिन्द !

सब बोलते हैं—जय हिन्द !

[सरकारी कप्तान आजाद हिन्द फ़ौज के कप्तान के सीने से लिपट जाता है और पास की धरती पर चार हिन्दुस्थानी आँसू मिलते हैं। एक बार पुनः आकाश 'जय हिंद' की गर्जना से गूँज उठता है]।

पटाक्षेप।

* जय-हिन्द *

कौंसिलर
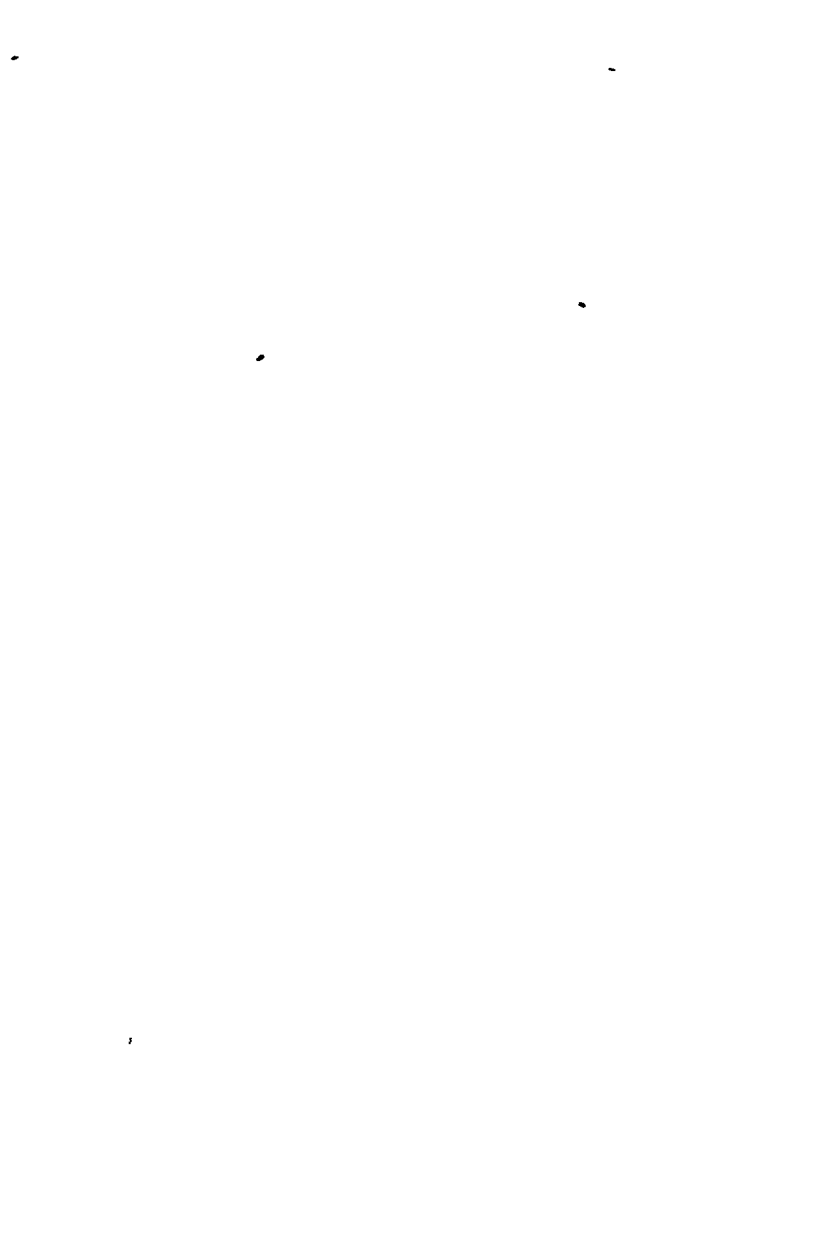
पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१— पं० विश्वेश्वरप्रसाद (म्युनिसिपल कौंसिलर)
२—इन्सपेक्टर (एक राज-कर्मचारी)
३—मुन्शी (एक राज-कर्मचारी)

स्त्री-पात्र

१—कुन्ती (एक शिशु)
२—श्यामा (पं० विश्वेश्वरप्रसाद की धर्मपत्नी)

कौंसिलर

[अपने निवास-स्थान के एक छोटे से दफ्तर में एक नवयुवक म्युनिसिपल कौंसिलर, प० विश्वेश्वर प्रसाद एक साधारण-सी कुर्सी पर बैठे है। उनकी टूटी-सी टेबिल के सामने तीन-चार पुराने स्टूल है, जिन पर दो राजकर्मचारी बैठे है और दो जमादार दर्वाजे पर संतरी-से खड़े है। पंडितजी की टेबिल पर कुछ कागजात और नकशे खुले पड़े है। राजकर्मचारी नक्शो की सहायता से पण्डितजी को कुछ समझा रहे है]।

मुंशी—इन्सपेक्टर साहब! (कौंसिलर की ओर सकेत करता हुआ) आपको, धन्ना हरिजन के मकान की मरम्मत के कागज तो दिखा दो।

इन्सपेक्टर—अरे हाँ, यह बात तो मै भूल ही गया था।

विश्वेश्वर प्रसाद—बात क्या है?

इन्सपेक्टर—अरे साहब, क्या अर्ज करूँ? एक मामूली-सी बात का बतगड बना लिया है। यदि सच पूछो तो, आजादी इन हरिजनो को मिली है।

विश्वेश्वर प्रसाद—हरिजनो की आजादी आपको इतनी क्यो अखर रही है?

इन्सपेक्टर—क्या बताऊँ सरकार, इन्होंने तो नाक में दम कर रक्खा है। (कागज़ और नकशा हाथ में लेता हुआ) इसी मुआमले को लीजिए। बन्ना भंगी के मकान का एक हिस्सा अर्से दराज़ से टूटा हुआ है। मलवे का ढेर लग रहा है। गधे के बच्चे को अब मरम्मत कराने की सूझी है। आम रास्ते को रोकना चाहता है। विष्णुदत्तजी पारीक, लाला सुखीराम और कपूरचन्द्र जैन ने तो साफ-साफ लिख दिया है कि फौरन् मलवा साफ करके आम रास्ते को चौडा बना दो। अब, केवल आप ही की सही होनी बाकी है।

विश्वेश्वर प्रसाद—शाबाश ! इन्सपेक्टरजी, आप चालाक तो बहुत मालूम पड़ते हैं। पर, यह उल्लू की लकड़ी किसी दूसरे पर ही घुमाने का कष्ट करो।

इन्सपेक्टर—हुज़ूर, हुज़ूर, आपने यह क्या फर्माया ? (कुछ घबरा कर)

विश्वेश्वर प्रसाद—मैं सच कहता हूँ। इन्सपेक्टरजी, आपकी दाल यहाँ नहीं गल सकती। समझे, बन्ना ने आपको पैसे नहीं दिये, इसलिए उसका कच्चा मकान भी तुड़वाने पर उतारु हो गए हो। मैंने स्वयं मौका देखा है, तुम झूठे हो।

इन्सपेक्टर—सरकार ! मैं झूठा ही सही, पर और मेम्बरान की भी....तो....।

विश्वेश्वर—चुप रहो इन्सपेक्टरजी ! उनकी कलम

उनके हाथ में थी और मेरी कलम मेरे हाथ मे है। (**पं० विश्वेश्वर इन्सपेक्टर के हाथ में से कागज़ छीन कर कुछ लिखते है**) जाओ, फिर कभी मुझ से ऐसा अन्याय करवाने का साहस मत करना।

इन्सपेक्टर—(खिन्न होकर) अरे, तुम दोनो यहाँ खड़े क्या करते हो? काम पर क्यो नही लगते? मुंशीजी, भगतीराम के चौक में इन्हे काम बताओ? और, मैं सरकार से बात करके अभी आया।

(तीनो व्यक्ति कौंसिलर को सलाम करके प्रस्थान करते है)

इन्सपेक्टर—भय्याजी, तुम मेरे दोस्त के लड़के हो, इसलिए मैं आपको अपने अनुभव की कुछ बाते बताना चाहता हूँ। यह एक मानी हुई बात है कि सात चोरो में एक साहूकार नही रह सकता। लाला सुखीराम और कपूरचन्द्रजी को मेम्बर बने अभी चार महीने भी नही हुए, पर एक के घर पर घोडे हिनहिनाते है और दूसरे के दर्वाज़े पर मोटरे दौडती है। इधर आपका यह हाल है—वही पुरानी टेबिल और वही टूटी हुई कुर्सियाँ। जिधर देखो उधर आपके शत्रुओ की संख्या बढती ही जा रही है।

विश्वेश्वर—मोहम्मदअली जी! क्या आप चाहते है कि मै अपना ईमान कुछ चाँदी के टुकडो में बेच दूं, जिनकी सेवा करने के लिए खडा हुआ हूँ, उन पर ही जुर्म करूँ और

अपने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को धोखा देने लगूं। सच्चाई और ईमान पर चलने वालों की दशा तो सदा खराब ही रहती है, पर उनका सर सदा ऊँचा रहता है। यदि परिस्थितियों को अपने अनुकूल न बना सका, तो मैं इस क्षेत्र से ही दूर हट जाऊँगा। पर, मुझे पूरा भरोसा है कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी। (बाहर से कोई पुकारता है) कौन है? अन्दर आओ, भाई!

(एक काले से गन्दे कपड़े पहने हुए मोटा सेठ प्रवेश करता है और इन्सपेक्टर के पास बैठ जाता है)।

विश्वेश्वर—कहिए, सेठजी, क्या आज्ञा है?

सेठ—(इन्सपेक्टर की ओर घूर कर) क्या कहूँ, आजकल दूकानदारी करना भी पाप है। पर, जब आप जैसे बड़े आदमियों का हिसाब भी दो-दो तीन-तीन महीनों तक न हो, तब कैसे काम चले?

विश्वेश्वर—अच्छा सेठजी! आप कल पधारना।

सेठ—अरे साहब! आज भी आपने तो टाल दिया। पहले सौदा देते है, पीछे पैसे माँगते है, खैरात नही लेते।

(बड़बड़ाता हुआ सेठ प्रस्थान करता है)

इन्सपेक्टर—(एक कागज और नकशा खोलते हुए) सेठ दूलीचन्द अपने मकान के आगे बरैन्डा और दूकान बनवाना चाहता है। सड़क काफी चौड़ी है। कोई खराबी नहीं, इसलिए इजाजत दिला दी जाने में कोई हर्ज नही है।

विश्वेश्वर—(नकशे को ध्यान-पूर्वक देखते हुए) स्थान तो वास्तव मे इजाजत देने के योग्य है। (कागजों पर कुछ लिखते है)

इन्सपेक्टर—भय्याजी मुआफ कर दे तो एक अर्ज करूँ।

विश्वेश्वर—कहिए न।

इन्सपेक्टर—सेठ दूलीचन्द ने मुझे ३०) के तीन नोट बाल-बच्चो को मिठाई बाँटने को दिये थे। लाला सुखीराम और कपूरचन्द्र के बच्चो को तो मैं मिठाई दे आया, अब आपकी क्या मर्जी है?

विश्वेश्वर—इससे पहले दूलीचन्द ने मेरे बच्चो के लिए कभी मिठाई नही भेजी। मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरे बच्चो के भाग्य मे रिश्वत की मिठाइयाँ कहाँ रक्खी है? उन्हे तो सूखी रोटी का टुकडा ही खाकर जीने दो। सेठो की मिठाइयाँ मेरे बच्चो को कैसे पच सकती हैं? हराम की मिठाइयाँ खाने से बच्चो के सस्कार बिगड जाते है।

इन्सपेक्टर—(फुर्ती से उठकर सलाम करता हुआ) पडितजी, आप इन्सान नही देवता हैं, देवता। (इन्सपेक्टर सलाम करके कमरे से बाहर जाता है और एक छोटे शिशु का प्रवेश होता है।)

कुन्ती—चाचाजी! चाचाजी!!

विश्वेश्वर—क्यो बेटी?

कुन्ती—आम वाला आया है। उसके ठेले में बहुत

मीठे-मीठे आम हैं। सुन्दर और मोहिनी भी ले रहे हैं।

विश्वेश्वर—जा बेटा, अपनी माँ से पैसे लेकर तू भी ले आ। [पं० विश्वेश्वर उदास होकर अपने स्थान पर बैठे रहते हैं और कुछ ही क्षणो में कुन्ती दोनों हाथों में आम पकड़े हुए अपनी माँ के साथ पंडितजी के कमरे में प्रवेश करती हैं]।

श्यामा—(रुष्ट होकर) क्यो जी, इन बच्चो को आप मेरे पीछे क्यों लगा देते हो? आपने मुझे कौनसी धरोहर सम्भला रक्खी है, जिससे मैं आपका और इन बालको का दिल खुश करती रहूँ? दिन भर तो आप मोहल्ले की सफाई कराते हैं और रात भर कागज काले करते है, फिर घर में पैसा कहाँ से आयेगा? यदि कोई भूला-भटका पैसा देना चाहे, तो उसे फटकार दिया जाता है। आखिर, इस थोथी पंडिताई की अकड़ में रक्खा ही क्या है?

विश्वेश्वर—श्यामा, मै अपना कर्तव्य-पालन कर रहा हूँ और भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे हैं। सच तो यह है कि सच्चे लोक-सेवको, निस्वार्थी कार्य-कर्ताओ और होन-हार लेखकों के मूल्य को अभी हमारे राष्ट्र ने नही पहिचाना है। पर, तुम सच कहती हो, हमे गृहस्थी भी तो चलाना है। (अपनी टेबिल के दराज से एक हस्तलिखित प्रति निकाल कर श्यामा को दिखाते है) श्यामा, क्या तुझे याद है, इस पुस्तक को मैंने कितने परिश्रम से लिखा था?

जेष्ठ का महीना, कडकडाती धूप और कमरे की अगारे-सी चार दिवारियो मे वैठा हुआ, पसीनो में तर, एक युवक सव कुछ भूल कर पुस्तक लिख रहा है। उसकी धर्मपत्नी यदि पखा झलती है तो वह मना करता है, पानी का गिलास पीने को देती है तो वह दूर रख देता है। वह किसी दूसरे ही लोक मे तन्मय हो रहा है। श्यामा, यही पुस्तक है। इस पुस्तक से हजारो मनुष्यो को लाभ होगा। कोई इससे मालामाल होगा और कोई विद्वान्। मुझ को इससे कुछ चाँदी के टुकडे ही मिलेंगे, जिनसे कठिनता से एक महीने का काम चल सकेगा, यदि तुम कुछ दिन और गृहस्थी का काम चला सको तो, हम को भी । नही, नही, हम नही चला सकते। मैं अभी जाता हूँ। (हस्तलिखित प्रति को लेकर डितजी द्वार की ओर वढ़ते हैं)।

श्यामा—सुनो भी, आप तो व्यर्थ जोश में आ गए। ऐसी कोई वात नही है। क्या इस पुस्तक को भी कोडियों मे दे दोगे?

विश्वेश्वर—(द्वार पर से घूम कर) यह वात तुम प्रलोभनवश कह रही हो। पर, श्यामा! पुरुष का कदम वढने के वाद पीछे नही हटता।

(प० विश्वेश्वर शीघ्रता से वाहर जाते हैं)

पटाक्षेप

कृष्ण-वियोगिनी

पात्र-परिचय

स्त्री-पात्र

१. नन्दिनी	(राधा की एक सखी)
२. विशाखा	(,,)
३. ललिता	(,,)
४ राधा	(कृष्ण-वियोगिनी)

पुरुष-पात्र

१. उद्धव	(श्रीकृष्ण के सखा)

कृष्ण-वियोगिनी

[स्थान—यमुना-तट की एक सघन निकुंज। कुछ गोपियाँ कदम्ब की तीतरपंखी छाया में बैठी हुई बातें कर रही हैं। काली, पीली, श्याम, धूम्र, श्वेत आदि रंगों की स्वस्थ एवं सुन्दर धेनुएँ तथा उनके बछड़े जंगल में आस-पास उन्मने-से होकर चर रहे हैं।]

नन्दिनी—न जाने, श्यामा और गोवर्द्धन को भी क्या हो गया है? मन-मार कर चरते हैं। कपिला और धूम्रावती के नेत्रों के कभी आँसू ही नहीं सूखते। सरयू और गंगा तो सदा उदास ही रहती हैं। गणेश और नन्दी कालिन्दी की ओर कसक भरी चितवन से देखा ही करते हैं। कृष्ण-वियोग से व्रज का सारा गोधन ठगा-सा, लुटा-सा और विरही-सा बन गया है।

विशाखा—देखती नहीं, निकुंजों में नव पल्लव विकसित होते हैं, कोंपलें अपना घूंघट खोलती हैं, पुष्प-वाटिका के सुमन खिलते हैं, पर इनका वह आकर्षण, इनकी वह कोमलता और इनकी वह मादकतापूर्ण सुगन्ध न जाने आज कहाँ चली गई? मयूर नाचते हैं, भ्रमर गुंजते हैं, पिक गाती हैं, पर, इनके नृत्य के साथ अश्रुओं की वर्षा होती है,

इनके गुंजार में कर्कशता आ गई है और कोयल की कूहक हृदय-भेदी बन कर रुदन की-सी ध्वनि करती है।

ललिता—कृष्ण मथुरा क्या गये, सच पूछो तो ब्रज-मण्डल के प्राण सूखते ही जा रहे हैं। न जाने वह अब क्यों और किसके लिए जीवित है? (गहरी निश्वास के साथ) दीपक की पतली-सी लौ के समान टिमटिमाती हुई एक आशा थी, वह भी अब बुझना चाहती है। कोई कहते हैं कि भीषण वियोग के प्रभाव से राधा के मस्तिष्क में विकार हो गया है, कोई उसे दीवानी बताते हैं, जिसने लोक-लाज खो कर ब्रजमण्डल मे अपना घर बना लिया है। कोई कहते हैं कि उसने सेवा-मार्ग अपना लिया है। राधा कहती है कि 'वह कृष्ण है, उसे कृष्ण के नाम से ही पुकारा करो।' वृषभानुदुलारी अब इस ससार मे नही है, उसे भूल जाओ, सर्वत्र केवल कृष्ण ही कृष्ण है। राधा ने तो अपना अस्तित्व मिटा कर कृष्णमय बना लिया, पर, हाय! हम क्या करे? न अपने को मिटा सकी और न जीवित ही समझती, केवल सिसकना और तड़फना रह गया है।

(मोर-मुकुट धारण किये हुए और बाँसुरी बजाते हुए बादलों के समान उमड़ते हुए गोधन के पीछे-पीछे राधा आ रही है)—

नन्दिनी—वह देखो, पगली आ गई। सारे गो-धन को ब्रज की ओर बढ़ाये लिए जा रही है। अभी दो पहर दिन शेष है, इसे यह क्या सूझा है?

विशाखा—सच पूछो तो राधा भीषण वियोगाग्नि से संतप्त होकर भी कर्तव्य-भ्रष्टा नहीं बनी है। वह मन-मोहन की दिन-चर्या को अपने जीवन मे पूर्ण रूप से उतारने में दत्तचित्त है। खेद तो इस बात का है कि हम अकर्मण्य बन कर राधा की समस्याओ को और भी उलझा रही है। यदि राधा भी हमारी तरह हाथ पर हाथ धर कर निराश होकर बैठ जाती, तो व्रज की आज क्या दशा होती?

ललिता—राधा के समान क्या हम सब कृष्ण को भूलने का प्रयास नही करती? पर, मन नही मानता कि राधा श्याम सुन्दर है। उसके कहने से मोरमुकुट धारण करती हैं, वशी शुष्क अधरो पर लगाती हैं, गोधन को हाँकने के लिए हाथ मे लठिया उठाती है, पर हृदय आगे नही बढता, हजार बार समझाने पर भी मन नही मानता। अरे, गणेश, नन्दी, कपिलादि कहाँ भगे जा रहे हैं?

(एक धीमी-सी सुमधुर अवाज़ आती है और उसके बाद तीनो सखियो के सम्मख गोधन के साथ राधा प्रकट होती है)

राधा—अरी गोपियो, यहाँ बैठी-बैठी क्यो ऊँघ रही हो? देखती नही, उत्तर दिशा मे बिजली की चमक के साथ एक बदली उमड चली है—बडे वेग से वर्षा आने वाली है। व्रज का सारा गोधन जगल मे बिखर चुका है—पशुओ की रक्षा करना है। ललिता, तुम तीनो गोधन

को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं शेष विखरे हुए पशुओ को जगल से ढूँढ कर लाती हूँ।

विशाखा—किन्तु राधा ..?

राधा—तुम्हारी राधा तो कभी की मर चुकी, तुम उसे भूलती क्यो नही ? जब व्रजवालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूल कर लोक-सेवा मे जुट जाँयगी, तब व्रज के उत्साहहीन ग्वालवाल और किसानो के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयो में स्फूर्ति आ जायगी—वे अपने हल और बैलो को सम्भाल लेंगे—व्रज पुन. हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा। व्रजवासियो को यह नही भूलना चाहिए कि, व्रजमण्डल किसी की धरोहर है और हमारे जीवित रहते उसे क्षति कौन पहुँचा सकता है? जिसकी यह धरोहर है, उसको सम्भला कर चाहे तुम (कंठ रुँध जाते हैं और अश्रु-राशियाँ बहने लगती हैं) चाहे तुम मानो या न मानो व्रज की सुरक्षा के लिए मेरी तरह समस्त व्रजवासियो को कृष्ण बनना ही होगा।

(वृक्षो को झुरमुट से—नेपथ्य से सहसा आवाज आती है—'धन्य व्रजवासियो ! अब नहीं रुका जाता' सहसा एक कृष्ण-सदृश्य दिव्य व्यक्तित्व गोपियो के सम्मुख आता है और अश्रु धाराएँ बहाता हुआ राधा के चरणों में लौटने लगता है और फिर हाथ जोड़ कर पुनः सम्मुख खड़ा होता है) ।

राधा—साधु, तुम कौन हो ? तुम्हारी वेश-भूषा और रग-ढग तो चिर-परिचित-सा है।

उद्धव—देवी ! मैं मथुरा से आया हूँ—मेरा नाम उद्धव है। महाराज श्री कृष्णचन्द्र का निजी सखा होने के नाते मैं आप लोगो की सेवा मे भेजा गया हूँ। मुझे अपने पाण्डित्य पर बहुत घमण्ड था और मैं ज्ञानबल से आप लोगो पर विजय-प्राप्त करने की धृष्ट कल्पना करता था। आपके अभूतपूर्व कृष्णवियोग और लोक-सेवा के सुदृढ रचनात्मक कार्य को देख कर स्वय को पूर्णतया आज पराजित समझता हूँ। मेरे ज्ञान और पाण्डित्य का दम्भ व्रज के रजकणो मे घुलकर भक्तिमय हो गया है। व्रजबालाओ, आपको धन्य है ? आप तो कृष्ण से भी बढकर है।

ललिता—चतुर नागरिक, क्या आपके सग हमारे चित्तचोर नही आए ? वे कब आएँगे ? क्या उन्होंने व्रज-बालाओ के लिए और विशेषकर राधिका के लिए कोई सन्देश भेजा है ?

नन्दिनी—भाई उद्धव, यह तो बताओ, क्या हमारे मदन गोपाल मथुरा मे भी गऊ चराते है, क्या कभी-कभी मक्खन-चोरी भी करते है ? सुना है कि गोपीनाथ आजकल मथुरा मे कुब्जादासी के साथ रास-क्रीडा करते हैं ?

विशाखा—क्या वासुदेव और माता देवकी हमारे बाल-गोपाल को नन्द-यशोदा की तरह माखन और रोटी

का कलेवा अब भी देते हैं? माता यशोदा ने घनश्याम का कलेवा एकत्रित कर रक्खा है—वे कहती हैं कि मोहन आवेगा तो उसे उसका सारा कलेवा सौंप दूंगी। अरे, महात्मा उद्धव, रोते क्यों हो? तड़पते हुए ब्रज का केवल छाया चित्र देख कर ही कांप उठे! बताओ, कृष्ण ने क्या कहा है?

उद्धव—(उद्धव के हिचकियाँ बँध जाती हैं और एक पत्रिका वे कठिनता से राधा को सौंपते हैं और राधा उसे हृदय से लगा लेती हैं और उद्धव का कंठ रुँध कर भर्रा जाता है) कृष्ण नहीं आ . सकते।

राधा (प्रमादिनी-सी होकर) तुम कपटी हो। कौन कहता है कृष्ण यहाँ नहीं है? मैं ही कृष्ण हूँ—मुझे सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। देखते नहीं, मेरा मोरमुकुट, यह बाँसुरी? यह बाँसुरी किसकी है? (बाँसुरी बजाने की चेष्टा करती है और मूर्छित होकर गिर पड़ती है, उद्धव और सखियाँ राधा को सम्भालती हैं)।

पटाक्षेप

वालि-वध

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. श्रीराम (अयोध्या के वनवासी राजकुमार)
२ श्री लक्ष्मण (श्री राम के छोटे भाई)
३. ब्रह्मचारी (श्री हनुमान)
४. सुग्रीव (किष्किन्धा के राजा के छोटे भाई)
५. वालि (किष्किन्धा के राजा)

वालि-वध

प्रथम दृश्य

[स्थान—ऋष्यमूक पर्वत। पथरीली घाटियो में राम और लक्ष्मण भटक रहे हैं। सहसा उस भयावह एवं निर्जन वन में एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी उनसे मिलता है।]

ब्रह्मचारी—महाशय ! आप कौन हैं ? वेषभूषा से तो आप राजकुमार से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आपकी लम्बी-लम्बी उलझी हुई जटाएँ और तपस्वियों की-सी पोशाक मन में सन्देह उत्पन्न करती है। एक ओर तो ऋष्यमूक पर्वत की ये पत्थरीली कठोर घाटियाँ, भयकर आँधी और दुःसह धूप और दूसरी ओर आपके मनमोहक सुन्दर कोमल अंग—ये सब क्या है ?

राम—ब्राह्मणकुमार ! हम राम-लक्ष्मण दोनो भाई है और कोसलराज महाराज दशरथ के पुत्र हैं। पिता ने हमे १४ वर्ष का वनवास दिया है। हमारे साथ एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री और थी। यहाँ राक्षसो ने मेरी धर्मपत्नी को हर लिया है। इन भयकर वनो मे हम उसे ही खोजते फिरते हैं। (राम के कण्ठ रुँध जाते हैं और नेत्रो से आँसू

टपक पड़ते हैं) युवक ब्राह्मण, आप यहाँ कहाँ रहते हैं? क्या आपको इस सम्बन्ध मे कुछ जानकारी है?

ब्रह्मचारी—राजकुमार! सच तो यह है कि मैं एक वानर जाति का मनुष्य हूँ। मैंने आपके सम्मुख यह छद्मवेष धारण कर एक छल रचा है।

[ब्रह्मचारी की संशययुक्त बात सुन कर लक्ष्मण उद्विग्न होकर शस्त्रो पर हाथ रखते है, और आक्रमण के लिए सतर्क हो जाते हैं।]

राम—छली और कपटी मनुष्यो की भाषा इस प्रकार की नहीं होती, युवक! तुम अवश्य ही एक ब्रह्मचारी हो—एक उत्तम पुरुष हो।

ब्रह्मचारी—दूरदर्शी राजकुमार! मैं इसी ऋष्यमूक पर्वत पर वानर राज सुग्रीव के साथ रहता हूँ। महाराज सुग्रीव इस समय महान् संकट में है। आप उनकी सहायता करिये—वे सहस्रो वानरो को चारो दिशाओं मे भेज कर आपकी धर्मपत्नी को खोज निकालेंगे।

राम—ब्रह्मचारी, आपने अपना नाम हमें क्यो नही बताया?

ब्रह्मचारी—कोमलकुमार! मैं अपना नाम आपको केवल एक शर्त पर बता सकता हूँ।

राम—वह क्या?

ब्रह्मचारी—मैं आजन्म रामदास बना रहूँ।

लक्ष्मण—भ्राता ! । (उद्विग्न होकर)

राम—लक्ष्मण ! शान्त। भक्त के लिए अधिक परिचय की आवश्यकता नही होती। ब्रह्मचारी ! मुझे मजूर है।

[ब्रह्मचारी अपना असली स्वरूप प्रकट कर श्रीराम के चरणो में गिर पड़ते है और श्रीराम उन्हें उठा कर हृदय से बार-बार लगाते हैं—तीनो के नेत्रो से प्रेमाश्रु उमड़ने लगते हैं।]

ब्रह्मचारी—(दोनो हाथ जोड़ कर) प्रभु ! केवल हनुमान ही रामदास कहलाने का अधिकारी है। (तीनों हँस पड़ते हैं)

[महावीर हनुमान अपने विशाल स्कन्धो पर राम और लक्ष्मण को चढ़ा लेते है और पवन के सदृश्य तीव्र वेग से ऋष्यमूक पर्वत के गगनचुम्बी शिखरो की ओर लपकते हुए दृष्टिगोचर होते हैं]

यवनिका-पतन

द्वितीय दृश्य

[स्थान : ऋष्यमूक पर्वत शिखर पर एक विशाल शिलाखंड पर वानरराज सुग्रीव विराजमान हैं। सुग्रीव

के सम्मुख राम, लक्ष्मण और हनुमान बैठे हुए विचार कर रहे हैं।]

सुग्रीव—(नेत्रों में जल भर कर) कोसलकुमार! आप निश्चिन्त रहें—मिथिलेश कुमारी जानकी जी अवश्य मिल जायगी। मैं एक बार यहाँ मन्त्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था, तब मैंने राक्षसों के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजी को आकाश-मार्ग से जाते देखा था। हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम!! हे राम!!!' पुकार कर वस्त्र गिरा दिया। हनुमान, वह दिव्य वस्त्र आपको क्यों नहीं दिखाते? (हनुमान लपक कर वस्त्र लेने जाते हैं)

राम—वानरराज! मुझे यह तो बताओ, आप इस भयंकर पर्वत पर क्यों रहते हैं?

सुग्रीव—(एक दीर्घ निःश्वास खींचकर) राजकुमार! यह एक अत्यधिक जटिल कथा है। सच तो यह है कि कभी-कभी मनुष्य भ्रम के चक्कर में पड़कर अपने विवेक को खो बैठता है। वालि और सुग्रीव दोनों भाई भी भ्रम के ही शिकार हैं। यह मनोवैज्ञानिक रहस्य है।

राम—आप सच कहते हैं वानरराज! मनुष्य मायावश होकर सब कुछ भूल जाता है। हाँ, फिर. . ।

सुग्रीव—वालि और मैं दो सहोदर भाई हैं। वालि और सुग्रीव का परस्पर का प्रेम एक आदर्श था। सहसा

एक बार मायावी दानव हमारी राजधानी किष्किन्धा मे आया और अर्द्धरात्रि को नगर के प्रवेशद्वार पर आक्रमण कर दिया। वालि जैसा महान् योद्धा इस मायावी-आक्रमण को कब सहन कर सकता था ? उसने शत्रु का उसी क्षण पीछा किया और मायावी को वहाँ से भागते ही बन पडा। मैं भी भाई की सहायतार्थ उसके पीछे-पीछे चला। वह धूर्त मायावी दानव एक भयानक पर्वत की गुफा मे जा घुसा। वालि एक क्षण रुका और मुझे देखकर आश्चर्य से पूछा, "अरे सुग्रीव ! तुम भी यहाँ । ठीक है। देखो, मायावी को जीवित छोडना किष्किन्धा के लिए अच्छा नही है। तुम एक पक्ष तक मेरी यहाँ प्रतीक्षा करो। यदि इस अवधि मे मै लौटकर न आऊँ, तो समझ लेना वालि । अरे, रो पडे सुग्रीव ! देखना किष्किन्धा का राज्य-सिंहासन सूना न रहे—अगद तुम्हारे हाथ मे है।" यह कह कर महा वीर वालि एक क्षण मे गुफा में प्रवेश कर गए। मित्र, मैंने वहाँ एक मास तक वालि की प्रतीक्षा की, पर वालि नही आये। गुफा में से रक्त की बडी-भारी धारा निकली। मै डर गया। मैंने समझा कि मायावी ने भाई को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। किष्किन्धा का क्या होगा ? वालि के आदेश का क्या होगा ? मै मायावी से लडना चाहता था, पर वालि के ये शब्द मेरे कानो मे जोर-जोर से गूंज रहे

थे—"बालक अंगद तुम्हारे हाथ में है, किष्किन्धा का राज्य-सिंहासन सूना न रहे।" अत मैंने गुफा के प्रवेशद्वार पर एक विशाल शिलाखण्ड उठा कर लगा दिया और वहाँ से भाग आया। पर, वालि नही मरा था, वालि ने मायावी को मारा था। वह रक्त की धार मायावी के रक्त की धार थी। मुझे भ्रम हो गया था, क्योंकि वालि ने एक पक्ष की अवधि दी थी।

जब वालि किष्किन्धा लौट कर आया, तो मुझे राज्य-सिंहासनारूढ देखा। उसके भी चित्त मे भ्रम उत्पन्न हो गया और उसने समझा कि सुग्रीव ने राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिलाखण्ड रक्खा था। उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे मित्र ! अब मै वालि के डर से इस ऋष्यमूक पर्वत पर एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। वालि के भय से मै अब भी त्रस्त हूँ, पर शापवश होकर वह यहाँ नही आ सकता।

राम—सुग्रीव ! इस कथा मे तुम्हारा दोष तो अणु-मात्र भी नही, वालि जैसे वीर को तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार नही करना चाहिए था। (भुजाएँ फड़का कर) सुनो, मै एक ही बाण से वालि को मार गिराऊँगा और त्रिभुवन में उसकी रक्षा करने वाला कोई भी न होगा। जो लोग मित्र के दुख से दुखी नही होते, उन्हे देखने से ही बड़ा पाप

लगता है। अपने पर्वत के समान दुखो को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु पर्वत के समान समझना चाहिए।

सुग्रीव—तपस्वीराज ! वालि मेरा भाई है। इस राष्ट्र को वालि जैसे शूरवीरो की आवश्यकता है। अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि सब कुछ छोड कर मै भगवान का भजन करूँ और सीताजी की खोज में अपने शेष जीवन को खपा दूँ।

राम—वानरराज ! आपके मुख से मै यह क्या सुन रहा हूँ ? वालि का भाई सुग्रीव इतना कायर नही हो सकता, फिर रघुवंशियो के वचन मिथ्या नही हुआ करते। क्या आपको मेरे धनुष-बाण पर भरोसा नही ? उठो, आज ही वालि को ललकारना होगा।

[शस्त्रों से सुसज्जित होकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव वालि से लड़ने के लिए प्रस्थान करते हैं]।

यवनिका-पतन

तृतीय दृश्य

[स्थान—किष्किन्धा। एक रणागण में वालि और सुग्रीव द्वंद्व युद्ध में संलग्न हैं। सुग्रीव की हार पर हार हो

बालि—(बाण के घाव की वेदना से तड़प कर) आह ! आह !! पर अब क्या हो सकता है ?

राम—महावीर ! आपके जैसा बाँका योद्धा इस पृथ्वी पर कभी नही हुआ, किन्तु मैं विवश था। (बालि के सर पर हाथ रखकर रुदन करते है) मुझे कभी इसका प्रायश्चित करना होगा।

(रोते हुए तारा और अंगद का प्रवेश)

वालि—युवक ! क्या वालि का वध वालि की हार है ?

राम—कदापि नही, किष्किन्धा नरेश !

वालि—(अपने पुत्र की ओर सकेत करके) यह.... अगद.. .मेरा पुत्र है, इसे स्वीकार कीजिए । आह ! सुग्रीव. .क्ष.. मा.. .राम ! राम !! राम !!!

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं ।
मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥
मैं वैरी सुग्रीव पिआरा ।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥

(वालि के प्राण-पक्षी उड़ जाते हैं)

पटाक्षेप

कौटिल्य

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१—विष्णुगुप्त	(चाणक्य)
२—चणक	(चाणक्य के पिता)
३—शकटार	(मन्त्री)
४—राक्षस	(„)
५—मगधेश्वर नन्द	(„)
६—कात्यायन	

स्त्री-पात्र

१—सुभाषिनी	(मन्त्री-कन्या और अभिनेत्री)

कौटिल्य

प्रथम दृश्य

[स्थान—महात्मा चणक का आश्रम। आश्रम के उपवन में विष्णुगुप्त और सुभाषिनी बात-चीत करते हुए दिखाई पडते हैं]।

विष्णुगुप्त—बात-बात पर रुष्ट होना क्या तुम्हारा स्वभाव बन गया है, सुभाषिनी ? बस ! इतनी-सी बात पर ही यह उदासी। अरे ! रो पडी। देखती नही, मेरा तीर खाली गया है। उस वृक्ष मे होकर तुम्हारा तीर आरपार निकल गया।

सुभाषिनी—(हँसकर) वात्स्यायन ! तुम बडे नट-खट हो, कभी रुष्ट ही नहीं होने देते। सच बताओ, लक्ष्य-भेद किसने किया ?

विष्णुगुप्त—(गभीर होकर) सुभाषिनी ने. . .।

सुभाषिनी—तुम झूठे हो, वात्स्यायन ! रग में श्याम होने के साथ ही क्या तुम मन के भी काले हो ?

विष्णुगुप्त—यदि सुभाषिनी का हृदय काला है, तो

वात्स्यायन का इसमें क्या दोष ? सुभाषिनी की हार विष्णु की ही हार है .. .. ।

सुभाषिनी—(बात काटकर) परन्तु, विष्णु अजय है। क्या सुभाषिनी के सम्बन्ध मे भी ऐसा नही कहा जा सकता ?

विष्णुगुप्त—(दीर्घ निश्वास के साथ) जब तक वात्स्यायनके हृदय पर सुभाषिनी का राज्य रहेगा, तब तक सभव है ऐसा ही हो।

सुभाषिनी—क्या इसमें भी कोई शका है, हठी ब्राह्मण ?

विष्णुगुप्त—शकावाली बात का तो भविष्य ही निर्णय करेगा, भोली बालिके! उसके लिए अभी से चिन्तित क्यो ?

[आश्रम की ओर से सहसा किसी के उच्च स्वर से पुकारने का घोष होता है—'अरे द्रुमिल ! ओ विष्णु ! . . . .।' आवाज को सुनकर विष्णु आश्रम की ओर दौड़ता है और उसके पीछे दौड़ती है कोमलांगी सुभाषिनी। आश्रम को कुटिया के द्वार पर एक शिलाखण्डपर बैठे हुए महात्मा चणक भाषण करते हुए दिखाई पड़ते हैं]।

चणक—यह महापद्म का जारज पुत्र नन्द, महापद्म का हत्याकारी नन्द, मगध में राक्षसी राज्य कर रहा है। अहिंसा की आड मे नित्य क्रूर कर्म होते हे। मंत्री शकटार का अपमान एक असाधारण घटना है। बौद्ध धर्मावलम्बी नन्द के विरुद्ध कुछ करना ही होगा। नागरिकों ! सावधान !

उपस्थित श्रोता—महात्मा चणक के इंगित पर हम सब मर मिटेंगे।

मन्त्री शकटार—क्या ये सब मेरे ही कारण होने जा रहा है? मै कल ही त्यागपत्र दे दूंगा। जिसके अन्न से मैं पला हूँ, क्या उसी राजसत्ता के विरुद्ध मुझे विद्रोह करना होगा।

चणक—मित्र! यह व्यक्ति विशेष का प्रश्न नही है। इस समस्या के साथ जन साधारण का भाग्य जुटा है। सच्चा ब्राह्मण अन्याय को कैसे सहन करेगा? मन्त्री शकटार के उदासीन रहने पर भी चणक नन्द के क्रूर कर्मो को भस्म करने के लिए दावानल बन जायगा।

शकटार—ठीक है भाई! पर मुझे अबोध नन्द पर अब भी दया ।

[शकटार का वाक्य पूर्ण होने से पूर्व ही एक आश्रम वासी आकर मस्तक नवा कर सूचना देता है]।

आश्रमवासी—गुरुदेव! आश्रम मे तक्ष-शिला जानेवाले सब छात्र प्रस्तुत है।

[महात्मा चणक विद्यार्थियोके स्वागतार्थ आगे बढते है और सब विद्यार्थी हाथ-जोड़ कर गुरु के सम्मुख खड़े दिखाई पड़ते हैं]।

चणक—मेरे प्राणो से प्यारे विद्यार्थियो! आप सब मगध के भावी भाग्य विधाता बनने तक्ष-शिला जा रहे है। आप मगध की आशा है, मगध के स्वाभिमान है और सर्वस्व

हैं। देखना, मगध के आश्रम की लाज तुम्हारे हाथ है। (अपने पुत्र विष्णुगुप्त के विशाल स्कन्धो पर हाथ रखकर भराए हुए कण्ठ से) विष्णु! वेटा!! यदि मगध के योग्य सच्चे ब्राह्मण न बन सको, तो मुझे और मगध को जीवित लौटकर अपना मुख न दिखाना। जाओ, भगवान् आपका कल्याण करें।

[सब शिष्य प्रस्थान करते हैं—केवल सुभाषिनी रह जाती है।]

सुभाषिनी—गुरुदेव! (रोते हुए) मुझे भी तक्षशिला जाने की आज्ञा दीजिये। क्या तक्षशिला मे अपने आश्रम के समान वालिकाओ का शिक्षण नही होता?

चणक—यह वात नही है वेटी! मुख्य-मुख्य शस्त्रो का अभ्यास किये विना और आश्रम की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए विना मैं तुम्हे तक्ष-शिला नही भेज सकता। अभी तुम्हे यहाँ ही अध्ययन करना होगा।

शकटार—(अपनी पुत्रीके आँसू पोंछते हुए) हाँ वेटी! महात्मा चणक की आज्ञा शिरोधार्य है, चलो।

[तीनों का प्रस्थान और पर्दा गिरता है]

द्वितीय दृश्य

[सरस्वती के उपवन में महाराज नन्द कुसुमोत्सव मना रहे हैं। मन्दिर और उपवन के पथ में सुभाषिनी और महाराज नन्द के प्रधान मंत्री राक्षस बातें करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं]।

राक्षस—सुभाषिनी! हठ न करो।

सुभाषिनी—नहीं मंत्री! उस ब्राह्मण को दण्ड दिये बिना सुभाषिनी जीवित नहीं रह सकती। मैं बौद्ध-स्तूप की पूजा करके लौट रही थी, उस कठोर, घमण्डी ब्राह्मण ने व्यंग किया। राक्षस! उसने कहा—'बौद्ध नर्तकियों के लिए भी एक धर्म की आवश्यकता थी। चलो, अच्छा ही हुआ। ऐसे धर्मावलम्बियों की भी कमी नहीं है।'

राक्षस—यह उसका अन्याय था।

सुभाषिनी—पर, अन्याय का प्रतिकार भी तो है। किसी को किसी पर लाछन लगाने का क्या अधिकार है?

राक्षस—मुझे समझने में क्या आप भूल कर रही हैं? मैं एक निश्चित सीमा तक ही बौद्धमत का अनुयायी हूँ। बौद्धमत की छत्रछाया में रहकर एक दुराचारी भी सदाचारी बन सकता है।

सुभाषिनी—नहीं, भावी राज-चक्र में भी आपको बौद्धमतावलम्बियों का ही समर्थन करना पड़ेगा। बोलो, क्या तय्यार हो?

राक्षस—मैं प्रस्तुत हूँ।

सुभाषिनी—जीवो, राक्षस!

[सहसा महाराज नन्द का प्रवेश]

नन्द—आज महामन्त्री सुभाषिनी से घुल-घुलकर क्या बातें कर रहे हैं?

राक्षस—सुभाषिनी से बौद्ध-धर्म की दीक्षा सुन रहा हूँ।

सुभाषिनी—महाराज! आज आप इतने उद्विग्न क्यों हैं?

नन्द—सुन्दरी! कहीं भी चैन नहीं मिलता। क्या कहूँ, किससे कहूँ? सेनापति मौर्य का पुत्र चन्द्रगुप्त ही विद्रोहियों का नेता बना है। यह सब उस भयंकर ब्राह्मण का षड्यन्त्र है।

सुभाषिनी—ब्राह्मण प्राय षडयन्त्रकारी ही होते हैं, अब यह कौन-सा ब्राह्मण आ गया महाराज?

राक्षस—यह सब जानकर तुम क्या करोगी, सुभाषिनी?

सुभाषिनी—क्या इसमें भी कोई रहस्य है? अच्छा राक्षस! जाती हूँ। आज्ञा हो महाराज! सरस्वती के मन्दिर में महारानी के सम्मुख अभिनय करना है।

[मस्तक झुका कर सुभाषिनी प्रस्थान करती है और पर्दा गिरता है। पुनः मगध के एक निर्जन साँय-साँय करते हुए पथ में सुभाषिनी की एक भयंकर मनुष्य से भेंट होती है]।

विष्णुगुप्त—इस निर्जन पथ में अर्द्ध रात्रि के समय जानेवाली तुम कौन हो, देवी?

सुभाषिनी—एक महिला का इस प्रकार मार्ग रोककर खडे होने वाले तुम कौन हो, भयकर पुरुष ?

विष्णुगुप्त—तुम्हारा क्या नाम है ?

सुभाषिनी—इससे प्रयोजन ? तुम कौन हो ?

विष्णुगुप्त—मैं चन्द्रगुप्त का गुरु विष्णुगुप्त हूँ, मुझे लोग चाणक्य भी कहने लगे है। यहाँ आओ, सुभाषिनी !

सुभाषिनी—वात्स्यायन ! .

विष्णुगुप्त—हाँ ! सुभाषिनी !

सुभाषिनी—तुम कब आये ?

विष्णुगुप्त—क्रान्ति के साथ . . ।

सुभाषिनी—समझ गई। पिताजी और गुरुदेव कहाँ है ?

विष्णुगुप्त—अन्धकूप मे कारावास की यातना भोग रहे है। गुरुदेव निर्वासित है। उनका गीवन छीना जा चुका है। हमारे आश्रम पर बौद्ध विहार बन गया है। हाँ, पर, इन सब बातो से तुम्हे क्या ? नन्द की रगशाला की प्रधान अभिनेत्री जो बन गई। मुना है कि सुभाषिनी कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बिनी भी है।

सुभाषिनी—इसमे कौन-सा आश्चर्य है ? मनुष्य तो परिस्थितियो के हाथ की कठपुतली है।

विष्णुगुप्त—चाणक्य ! परिस्थितियो को तोड-मरोड कर अपने अनुकूल बनाना खूब जानता है। जाओ सुभाषिनी ! अब तुम्हारा कोई मार्ग नही रोकेगा।

सुभाषिनी—दीपक जलाकर कहाँ चले जा रहे हो, वात्स्यायन।

विष्णुगुप्त—चाणक्य को अंधकार भी पसन्द है।

[विष्णुगुप्त अंधकार में अदृश्य होते हैं और सुभाषिनी अवाक और स्तम्भित रह जाती हैं]।

तृतीय दृश्य

[सिन्धु नदी के तट पर घास की एक पर्णकुटी में संग-मरमर की एक शिला पर, एक तपस्वी के वेष में भारतवर्ष के महान् क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ चाणक्य बैठे-बैठे मगध के वयोवृद्ध अमात्य कात्यायन से बातें कर रहे हैं]।

विष्णुगुप्त—वररुचि! यदि तुम मेरा रहस्य खोल दोगे, तो बना बनाया काम बिगड़ जायगा, मगध-साम्राज्य पुनः संकट में पड गया है। चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट बनकर कुछ घमण्डी-सा बन गया है, उसकी आँखें भी तो खोलनी है। जब तक सिल्यूकस का सैन्यबल भारतवर्ष मे है, तब तक देश में पूर्ण शान्ति स्थापित नही हो सकती।

कात्यायन—ब्राह्मण हो भाई, दया के सागर हो, तुम्ही मान जाओ। मैं वृद्ध हूँ, मुझसे अब राज-काज नही चलता। चाहता हूँ कि इसी सिन्धु के तटपर कुछ दिन रहकर अपना वार्तिक पूरा कर लूं।

विष्णुगुप्त—असभव, चाणक्य पुन मन्त्रित्व-ग्रहण नही कर सकता। यवन-सेना भारत के वक्षस्थल पर शूल की तरह खडी है। तुम्हें शीघ्र मगध की यात्रा करनी होगी।

कात्यायन—आजकल राक्षस सिल्यूकस का एक वेतन-भोगी सेवक बन गया है। यह सब उसी का कुचक्र है।

विष्णुगुप्त—तुम निश्चिन्त रहो, केवल मगधका आन्तरिक शासन सम्भाल लो, इधर मै सब ठीक करूँगा। हाँ ! यदि सुभाषिनी को भेजते तो कार्य में आशातीत सफलता मिलती। समझे !

कात्यायन—विष्णु ! गृहस्थ-जीवन कितना सुन्दर है ?

विष्णुगुप्त—अब हम-तुम साथ ही विवाह करेगे !

कात्यायन—नही विष्णु ! मेरी गृहणी तो घर पर है और फिर यह वृद्धावस्था ।

विष्णुगुप्त—कात्यायन ! तुम वास्तव मे एक सहृदय ब्राह्मण हो। करुणा और सौहार्द का एक साथ उद्रेक ऐसे ही उदार हृदयो में होता है। प्रकृति ! शक्ति ! देख, तुझे ब्राह्मण के दो स्वरूप बताऊँ। एक ओर करुणा का करुणालय उमड रहा है, क्षमा और सहानुभूति की नदियाँ उमड रही है, हर्ष, हँसी और आशा के स्रोत कल-कल नाद से नाच रहे है। दूसरी ओर मेरा पाषाण-हृदय हिमालय-सा बनकर कठोर से कठोर दण्ड देने में भी नही हिचकिचाता, मुझे केवल सफलता चाहिए। मुझे अपने हाथों खडे किये हुए एक महान

साम्राज्य को फलता-फूलता देखना है। हा ! हा !! . . हा ! [ठहका मार कर भयंकर हँसी हँसते हैं]।

कात्यायन—शान्त, तुम हँसो मत कौटिल्य, तुम्हारी हँसी तुम्हारे क्रूर दण्ड से भी अधिक भयकर है। वह देखो ! कौन आ रही है ? सावधान ! इस सुकमार और निरापराध कली को भी निष्ठुरता से कहीं न कुचल देना। जाता हूँ ब्राह्मण ! इस वृद्धावस्था में भी मगध का प्रधान मंत्री बनना ही पड़ेगा।

(कात्यायन का प्रस्थान। ब्राह्मण चाणक्य अपनी बिखरी हुई जटा को बाँध कर एक रमणी का स्वागत करने के लिए सिन्धु-तट की ओर बढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। आगन्तुक महिला कौटिल्य को प्रणाम करती हुई दिखाई पड़ती हैं।)

विष्णुगुप्त—(बालू के एक टीले पर बैठते हुए) सुभाषिनी ! तुम यहाँ कैसे ?

सुभाषिनी—आपकी अनुपस्थिति मे सम्राट ने . . । पिताजी ने मुझे आपकी सेवा मे भेजा है और कहा है कि शीघ्र मगध नहीं लौट चले तो बना बनाया काम बिगड़ सकता है।

विष्णुगुप्त—मैं मगध क्यो चलूं ? मगध मे मेरे लिए अब क्या रक्खा है। यह महान् साम्राज्य महाराज चन्द्रगुप्त का है, महात्मा कात्यायन और महामंत्री शकटार के हाथ मे शासन की बागडोर है, फिर चिन्ता किस बात की ? याद है ! तक्षशिला के लिए विदा करते समय पिताजी ने कहा था—

'यदि मगध के योग्य सच्चे ब्राह्मण न बन सको तो मुझे और मगध को अपना मुंह न दिखाना।' जब तक यवन सेना भारत की पवित्र भूमि पर मण्डराती रहेगी, तब तक कौटिल्य को चैन कैसे आ सकता है? तू ही बता सुभाषिनी, मैं मगध कौनसा मुख लेकर लौटूं? हाँ! केवल बचपन की एक धुंधली-सी स्मृति कभी-कभी हृदयाकाश मे तारावली के सदृश्य टिमटिमाने लगती है, परन्तु अब तो वह भी . . ।

सुभाषिनी—नीलाम्बर की छत के नीचे स्वनिर्मित साम्राज्य मे स्वच्छन्द विचरनेवाले निर्भीक ब्राह्मण के मुख से आज मैं ये कैसी बातें सुन रही हूँ?

विष्णुगुप्त—ये सब कुछ तुम्हे सुनना ही होगा, सुभाषिनी! कौटिल्य को क्या कभी दया आती है? भारतवर्ष की स्वतत्रता की रक्षा के लिए तुम्हे एक और भयकर अभिनय करना होगा। देश की सुरक्षा के लिए जब कौटिल्य सब कुछ बलिदान कर सकता है, तो सुभाषिनी ही पीछे क्यो रहे?

सुभाषिनी—वात्स्यायन! स्वदेश के लिए सर्वस्व तक बलिदान किया जा सकता है, पर अभिनय करती-करती अब मैं थक गई हूँ।

विष्णुगुप्त—कौटिल्य अत्यधिक क्रूर है, सुभाषिनी! वह कब मानेगा। जानती हो, यवनो के वेतन भोगी, एक राष्ट्रद्रोही राक्षस से प्रणय का अभिनय तुम्हे पुन करना होगा। मेरे लिए नही, देश की सुरक्षा के लिए ।

सुभाषिनी—क्रूर, निर्दयी, पाषाण-हृदयी ! न जाने तुम किस धातु के बने हो ? हाय मेरा भाग्य !

(सिसकियाँ भर कर रोती है)

विष्णुगुप्त—सुभाषिनी, तुम्हारा करुण क्रन्दन मेरे कठोर निर्णय को नही बदल सकता। मै तुम्हे दण्ड दूंगा। कौटिल्य के हृदय में क्षमा के लिए कोई स्थान नही है। हाँ ! तुमसे बढ़कर इस ससार मे मेरा हितैषी इतर कौन हो सकता है ? सुभाषिनी और राक्षस के हाथ मे चद्रगुप्त के महान् साम्राज्य की बागडोर सौंपकर विष्णुगुप्त हिमालय के अंचल मे तपस्या करेगा।

सुभाषिनी—महापुरुष ! मुझे क्षमा करो। मै सब समझ गई। सहस्रवार प्रणाम ! (झुककर दण्डवत करती है) भाई, मुझे आशीर्वाद दो। मै अभी चली।

(अपने आँसुओं को साड़ी से पोछते हुए सुभाषिनी का प्रस्थान।)

विष्णुगुप्त—(स्वतः) स्त्री मेरी साधना के मार्ग में एक अर्गला है, जिसे मै कई वर्षों पूर्व ही तोड चुका। एक धुंधली-सी रेखा बचपन की याद को लेकर खिचा करती थी, उसको भी मैने आज मिटा दिया। हा ! हा ! ! . . . . हा !

(ठहका मार कर जोर-जोर से पागलो की तरह भयंकर हँसी हँस कर गर्जना करते है।)

(पटाक्षेप)
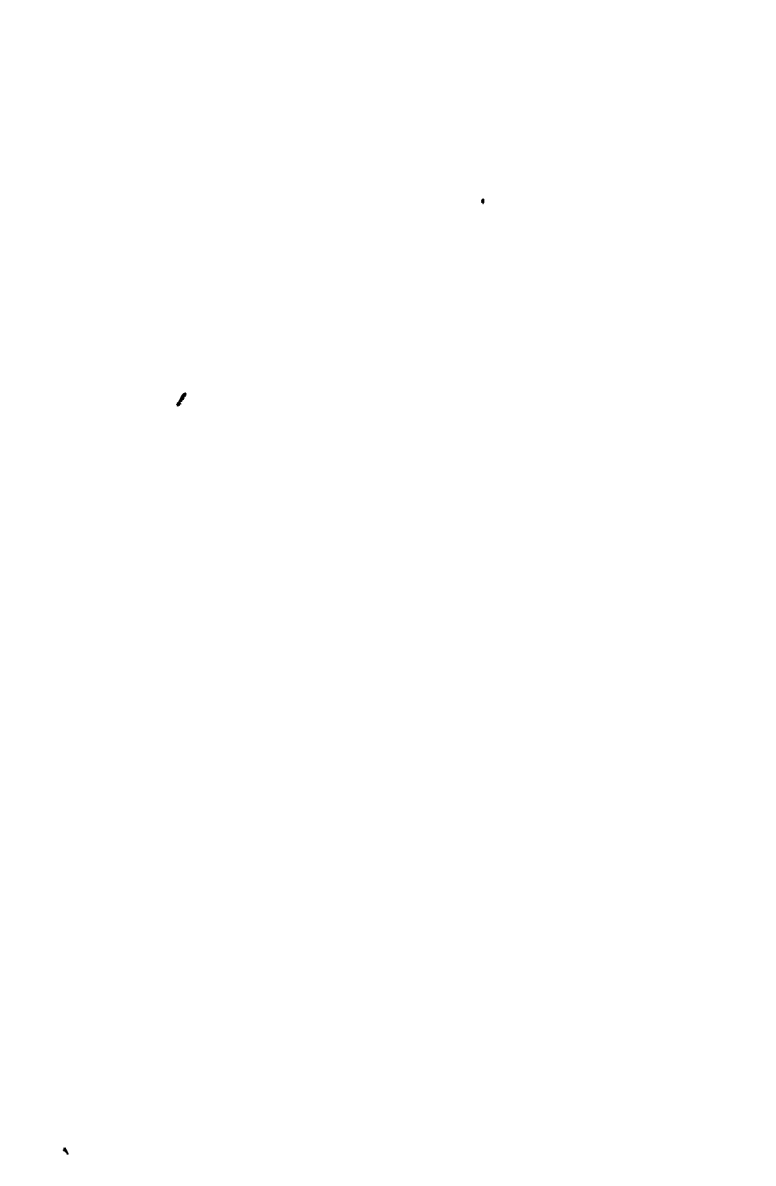
ताड़-गुड़

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१ सक्सेना (काले रग का इकहरे शरीर का आदमी)
२ गोयल (एक गोरा और मोटा आदमी)
३ भार्गव (आधुनिक ढग का व्यक्ति)
४. सम्पादक (एक पडित जी)
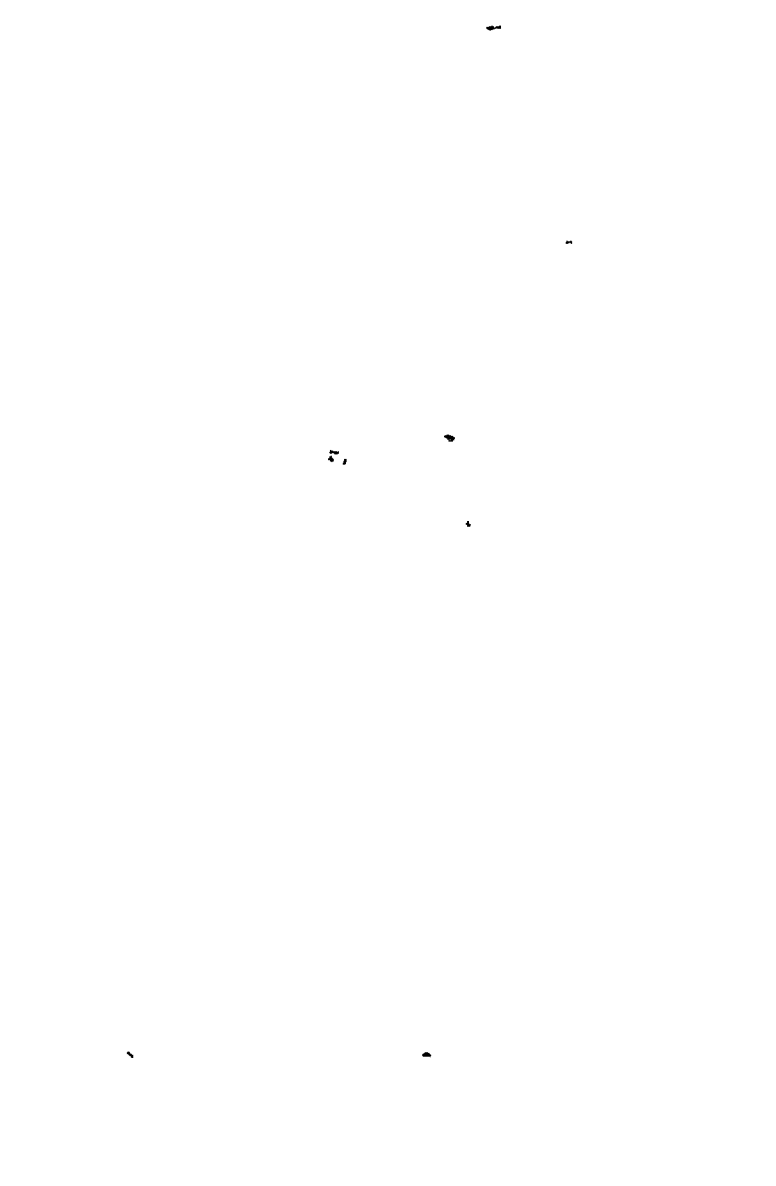
ताड़-गुड़

(एक सरस कथोपकथन)

[समय—रात्रि का प्रथम चरण। स्थान—एक ड्राइंग रूम। कमरे के बीच एक गोल मेज है—मेज के चारो ओर कुर्सियो पर कुछ मित्र बैठे हुए बातें कर रहे है।]

सक्सेना—आज तो मारे ठड के कपकपी छूट रही है, क्यो मि० गोयल?

गोयल—मुझे आश्चर्य है, मि० सक्सेना?

सक्सेना—क्यो, क्या तुम्हे ठड नही लगती?

गोयल—सारा शरीर कॉप रहा है। पर, ताज्जुब तो यह है कि सम्पादकजी का आधा डिब्बा सिगरेट का खाली करने पर भी तुम्हे ठड सता रही है।

(सब हँसते है)

सम्पादक—(सिगरेट के डिब्बे की ओर देखते हुए) नही कोई हर्ज नही, आप तो और पीओ सक्सेना बाबू? गोयल, तुम बडे मुँहफट हो जी! देखते नही सक्सेना झेंप गये।

सक्सेना—यह सम्पादकजी के व्यंग हमको प्रभावित नही कर सकते। यदि अपना भला चाहते हो तो, चाय जल्दी से पिला दो, वरना चार-चार सिगरेट एक साथ जलाऊँगा और पण्डितजी रात भर पलग पर पड़े-पड़े तारे गिनते रहेगे।

भार्गव—यह वात हुई है पते की, मै भी यही कहने वाला था।

सक्सेना—लेकिन आप कहते कैसे, ख़ुदा ने आपको हिम्मत ही नही दी।

(सब हँसते हैं)

सम्पादक—मै भी भार्गव के मुँह से यही सुनना चाहता था। चाय तो पहले ही तैयार है। (ज़ोर से आवाज़ देकर) अरे रामचरण, अरे ओ रामचरण ! ज़रा चाय जल्दी ले आओ, भार्गव साहब मारे ठड के सिकुडे जा रहे है।

(पुनः सब हँसते हैं)

(नौकर चाय के प्याले लाकर मेज़ पर रखता है)

सम्पादक—रामचरण ! भार्गव साहब चाय नही पीते, इन्हे दूव देना।

रामचरण—जो हुक्म !

(इसके बाद चारो स्वाद लेकर पीना शुरू करते हैं)।

सम्पादक—बोलो गोयल ! चाय कैसी बनी ?

गोयल—पडितजी, चाय क्या बनी है ? कमाल है !

सक्सेना—भाई, वाकई कमाल है? क्या मै भी कुछ कहूँ? सब—(एक स्वर से) कहिये, कहिये।

सक्सेना—इसमे तो एक अजीब सुगन्ध भी है, जिससे मेरा तो जी भरा जा रहा है। पडितजी, एक कप और देना पडेगा।

सम्पादक—अरे भाई, एक क्या, आप दो पीजिये। भार्गव साहब, आपको दूध कैसा लगा?

भार्गव—पडितजी, दूध पीने का मजा ही जिन्दगी में आज आया है।

सक्सेना—यह कैसे?

भार्गव—दूध का यह सुनहरा रग, यह महक और यह स्वाद बस, कुछ न पूछिए। पर, पडितजी, यह तो बताइए आज यह क्या जादू है?

सक्सेना—(भार्गव को चिढ़ाते हुए) मियाँ, अण्डे का पाउडर है, अण्डे का ।

भार्गव—चोर को तो साहूकार भी चोर ही दिखाई पडता है। यह तुम्हारे घर का दूध होता तो मैं विश्वास कर लेता।

सम्पादक—जी नही, आप लोग यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि इस चाय और दूध मे 'ताड-गुड' का मीठा है।

भार्गव—(चिन्तित होकर) पडितजी ! ताड से तो ताडी बनती है। आज आपने यह क्या किया?

सम्पादक—घबराइए नही भार्गव साहब ! आपका धर्म भ्रष्ट नही होगा, मै भी तो एक ब्राह्मण हूँ? क्या आप जी, अंगूर, अनार, सन्तरा आदि पदार्थ नही खाते?

गोयल—इन्हे तो सभी प्रयोग में लाते है।

सक्सेना—परन्तु, इनके रस से मदिरा भी बनती है।

भार्गव—यह एक दूसरी बात है, एक अलग प्रयोग है।

सम्पादक—यही बात ताडी पर भी है। खजूर, ताड, नारियल, सैगो आदि वृक्षो को आदमी छेद कर रस निकालते है? इस रस को 'नीरा' कहते है। ताड-गुड बनाने वाले इसी ताजे नीरे को उबाल कर गुड बना लेते है। नीरे का शहद जैसा गुड बनता है। गन्ने के गुड से यह गुड अच्छा होता है। गन्ने का गुड सिर्फ मीठा होता है, ताड-गुड स्वादिष्ट होता है। इसकी महक और स्वाद मन लुभाने वाले होते है। हमारे देश मे ताड-गुड करोड़ो रुपयों का बन सकता है।

गोयल—यह तुम क्या कहते चले जा रहे हो, पडितजी?

सम्पादक—भाई मै सच कहता हूँ। राजस्थान में भी लाखो रुपयो का ताड-गुड बन सकता है। इस समय राजस्थान मे अनुमानत २० लाख खजूर के वृक्ष है। ये वृक्ष गुड और चीनी के भण्डार है।

सक्सेना—अच्छा तो पडितजी, यह रस कैसे निकालते है?

सम्पादक—रस्सी की सहायता से खजूर के वृक्षो पर

छेदक चढते है और वृक्षो मे छेद कर घडो मे नीरा इकट्ठा कर लेते है। नीरे के घडो में पहले थोडा-सा चूना डाला जाता है। चूना एक रक्षक द्रव्य है। अत वह नीरा को खट्टा होने से रोकता है और उसमे उफान नही आने देता। इसके बाद नीरा को कडाही मे डाल कर गरम किया जाता है और फिर उससे गुड बना लेते है।

भार्गव—तो क्या वह चूना शरीर के लिए हानिकारक नही है ?

सम्पादक—चूने का प्रभाव नीरा मे सुपरफास्फेट डाल कर मिटा दिया जाता है और चूना वैसे भी शरीर के लिए हानिप्रद नही है।

भार्गव—परन्तु, इसी रस से ताडी भी तो बनती है।

सम्पादक—ताड-गुड और ताडी की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ है। जौ से रोटी भी बनती है और मदिरा भी। रोटी को हम सब आदर से ग्रहण करते है और मदिरा त्याज्य है, घृणित है। इसी तरह ताज़ी नीरा से गुड, चीनी, मिश्री, आदि बनाई जाती है, पर खट्टी होने पर वह ताडी बन जाती है। अच्छे दूध से बीसो मिठाइयाँ बन सकती है, पर फटे दूध से कुछ नही बन सकता।

सक्सेना—हूँ ! मैने भी कल एक समाचार-पत्र में ताड-गुड के विषय मे ऐसी ही बाते पढी थी। हाँ, सम्पादकजी,

क्या हमारी सरकार भी सामूहिक ढग से ताड़-गुड़ बनाने की कोई योजना रखती है ?

सम्पादक—हाँ, यह कार्य राजस्थान में तो १२ महीने से चल रहा है। पर, ताड़-गुड़ एक ऐसा ग्रामोद्योग है, जिसको व्यक्तिगत ढग से ही चलाना अच्छा है। सरकार का इरादा ताड़-गुड़ का व्यापार करने का नही है और न वह इस उद्योग को किन्ही पूंजीपतियो के हाथों मे सौपना चाहती है। सरकार का उद्देश्य ताड़-गुड की पद्धति का प्रचार करने से है कि जिससे प्रत्येक ग्रामीण स्वावलम्वी वन जाय और राष्ट्र की उपज मे वृद्धि हो।

गोयल—इसका मतलव तो यह है कि सरकार देहातियों में इस पद्धति का प्रचार कर मैदान से दूर हटना चाहती है।

सम्पादक—हाँ, तुम किसी हद तक ठीक कह रहे हो। जव राजस्थान का प्रत्येक ग्रामीण एवं नागरिक इस पद्धति से परिचित हो जायगा, तो यह उद्योग स्वत ही चल पडेगा; क्योंकि प्रत्येक इन्सान स्वावलम्वी होना चाहता है।

भार्गव—क्या ताड़-गुड उद्योग से गन्ने की कास्त पर भी कोई प्रभाव पडेगा ?

सम्पादक—ताड-गुड उद्योग 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का सहायक है। गन्ने की कास्त पर ताड-गु उद्योग का सीधा प्रभाव यह पड़ेगा कि किसान खेतो मे गन्ना वोने के वजाय अन्न उत्पन्न करेंगे। क्योंकि आजकल हज़ारो

एकड़ उपजाऊ ज़मीन गन्ने की काश्त ही घेर लेती है। ज्यो-ज्यो ताड-गुड उद्योग बढेगा, त्यो-त्यो गन्ने की काश्त घटेगी और ज्यादा अन्न उत्पन्न होगा। इतना ही नही गन्ने को उगाने मे, सीचने मे, काटने में, पेलने मे और रक्षा करने मे बीसो झझट करने पडते है। वह तो किसान के खून का पानी बना देता है। पर खजूर के पेड लाखों की सख्या में खडे है। इनका रस लेने में कुछ भी झझट नही करना पडता।

सक्सेना—हाँ, यह तो आपने ठीक कहा। पर, क्या यह उद्योग राजस्थान मे चल सकेगा ?

सम्पादक—क्यो नही, जब मद्रास और बगाल में लाखों रुपयो का गुड बनता है, तब राजस्थान में ही ऐसी क्या बात है ? राजस्थान मे लाखो खजूर के वृक्ष बेकार पडे है। ये खजूर के वृक्ष राजस्थान की मरुभूमि मे अमृत देंगे। किसी योजना की सफलता अच्छे कार्यकर्ताओ, कर्मठ प्रचारको और जनता की सद्भावनाओ पर निर्भर रहती है। सरकार का कर्तव्य इस योजना को कार्यरूप मे परिणत कर लोगों मे शौक पैदा करने का है।

भार्गव—क्यो पडितजी, ताड-गुड से मिठाइयाँ भी बन सकती है ? मैंने कभी ताड-गुड नही देखा। क्या आप दिखला सकते है।

(सम्पादक मेज की दराज से तीन कागज की पुड़ियां निकाल कर तीनों मित्रों के हाथ में सौंपते है और तीनों मित्र

पुड़िया में से ताड़-गुड़ निकाल कर अपनी जिह्वा पर रखते है)

भार्गव—गुड़ क्या है, यह तो बनी बनाई मिठाई है।

सक्सेना—मीठा होने के साथ ही साथ कुछ कसायला भी है।

गोयल—इस उद्योग को अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिए। कसायले पन को दूर हटाने के प्रयत्न भी होने चाहिएँ।

सम्पादक—इस गुड़ से आप हलवा, गजक, रेवडी, तिलसकरी, गुलगुले आदि सब तरह की मिठाइयाँ बना सकते है। इससे बढ़िया किस्म की चीनी व मिश्री भी बनाई जाती है।

सक्सेना—तो, क्या सम्पादकजी आप हमें इसकी चीनी व मिश्री के भी दर्शन करायेंगे?

(सम्पादक दोनो के नमूने देते है।)

सक्सेना—गज़ब है भाई लोगो, ग़ज़ब, पंडितजी ने तो आज हमे एक अनोखी दुनिया मे ला खड़ा किया है। अच्छा तो अगले रविवार को भार्गव साहब भाभी साहब के हाथ से ताड़-गुड़ की मिठाइयाँ बना कर मित्रमंडली का मनोरंजन करें। यही आज का प्रस्ताव है।

गोयल—मैं इसका समर्थन करता हूँ।

सम्पादक—क्यो भार्गव? अब तो यह प्रस्ताव पास हो रहा है।

भार्गव—लेकिन, मेरे पास ताड-गुड कहाँ है ?

सम्पादक—इसकी चिन्ता मत करो, राजस्थान के ताड-गुड सघटक मेरे मित्र है केवल ५) की मजूरी दे दो।

भार्गव—अच्छा तो यही सही। इस गुड की पूरी आजमाइश होगी और मनोरजन भी।

सक्सेना—इसका जनाव को धन्यवाद। पर अब चलो, (घडी की ओर देख कर) आज का दरबार बरखास्त किया, सवा दस हो गए। सम्पादक जी ! जय हिन्द !

(चारो का प्रस्थान।)

पटाक्षेप

स्वार्थी

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१ जेलर

२ साथी

स्त्री-पात्र

१ कैदी (एक स्त्री)

स्वार्थ

[स्थान—जेल की चारदीवारी में कैदियों के रहने की बैरक। समय-अर्द्धरात्रि। जेलर जेल का निरीक्षण करते हुए एक बैरक में प्रवेश करता है। बैरक में रहनेवाली एक बन्दिनी ठंड से काँपती हुई सहसा खड़ी हो जाती है]।

जेलर—क्यों, क्या ठंड लग रही है?

क़ैदी—ठंड भी कैदियों को ही अधिक सताती है।

जेलर—इस बैरक पर सूरज की एक भी किरण नहीं पड़ती। क्यों न आपका तबादला बैरक नं० १५ में कर दिया जाय? शायद, आपको तो इसमें कोई ऐतराज़ नहीं होगा?

क़ैदी—आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद। पर, मैं इस बैरक को नहीं छोड़ना चाहती।

जेलर—मैं आपका तबादला 'ए' क्लास के कैदियों के रहने वाले कमरे में कर रहा हूँ।

क़ैदी—साहब, यदि आप मुझे सुखी देखना चाहते हैं तो, कृपया मेरा तबादला यहाँ से न करें। यहाँ की दीवारों में मैं घुल-मिल गई हूँ, यह जेल की 'सी' क्लास की बैरक भी मेरे लिए स्वर्गतुल्य बन गई है।

जेलर—मुझे आश्चर्य है! मैं नहीं जानता था कि

आपको इस बैरक से इतना मोह हो गया है। खैर, जैसी आपकी इच्छा....। यदि मेरे हाथ मे ही सब कुछ होता तो, आपको जेल की इस चारदीवारी से मुक्त करा कर इसी क्षण अपने गर्मागर्म कमरे मे ले चलता। अच्छा, फिर कल मिलेगे।

[जेलर मुस्कराहट के साथ कैदी पर कटाक्ष करता हुआ बाहर जाता है और कैदी गंभीर मुद्रा से नीची दृष्टि कर लेती है। जमादार पुनः बैरक के ताला बन्द कर प्रस्थान करता है। क़ैदी चटाई पर टाट बिछाकर अपने कम्बल को दुबले-पतले शरीर से लपेटकर ठंड से कांपती हुई बैठ जाती है और कुछ समय तक घुटनो में अपना सर रखकर चुप-चाप बैठी रहती है। फिर सहसा अपनी बैरक की दीवार से सटी हुई दूसरी बैरक के उजालदान की ओर मुंह घुमाकर किसी को पुकारती है। उजालदान इतना ऊँचा है कि वे एक-दूसरे को नही देख सकते]।

क़ैदी—साथी, साथी! साथी!! आज बोलते क्यो नही? साथी! अभी से सो गए। हाड-कम्पा देने वाली ठड है, हवा तीर की तरह हड्डियो में चुभ रही है। पाँव ओले की तरह गल रहे है। भगवान् जानें, तुम्हे नीद कैसे आती है?

साथी—(दर्द भरी कराहट के साथ) आह! दिन भर चक्की पीसने वाले हाथो के छाले फोड़े बन गए है।

उफ, गज़ब की टीस चल रही है, इन हाथो में। जी चाहता है इन अँगुलियो को काट कर फेंक दूं। रीढ की हड्डी तडक-तडक कर चूर-चूर होना चाहती है। आँख लगना तो दूर रहा, इस वर्फ-सी चटाई पर लेटा तक नही जाता।

क़ैदी—फिर डाक्टर ने क्या लिखा?

साथी—तीन दिन की छुट्टी की सिफारिश की है। हाँ, आज आपने जेलर की बात क्यो नही मानी?

क़ैदी—अपने दिल से पूछो।

साथी—(हँसकर) शायद, जेलर एक भला आदमी है?

क़ैदी—(झुँझला कर) जेलर का नाम मत लो। साथी! मुझे उसके नाम से ही घृणा होती है। अच्छा साथी, यह तो बताओ, तुम काले हो या गोरे और तुम्हारी नाक कैसी है?

साथी—(खिलखिलाकर हँसता हुआ) बिलकुल काला-बवर्चीखाने के तवे जैसा और नाक चूहे के बिल जैसी, आधी कटी हुई। पर, यह तो बताओ, आप मोटी है या पतली?

क़ैदी—बिलकुल काली, भद्दी, मोटी, जैसे भैंस। पर, इन बातो से तो मैं डर गई, साथी—मेरा हृदय काप उठा है। हाड-कम्पा देने वाली ठड, बॉय-बॉय करने वाली अर्द्धरात्रि, जेल की बैरक, काला, आधी नाक कटा हुआ एक भयकर पुरुष और काली, भद्दी, भैंस जैसी स्त्री!

यह कौनसा नर्क दिखा रहे हो, साथी ? तुम्हे डर नही लगता, कितने कठोर हो ? निर्दयी !

साथी—अरे, आप डर गईं। अच्छा तो सुनो, कश्मीरी स्त्रियो का सौदर्य केसर की क्यारियो की तरह महकता है, वे मृगनयनी और गजगामिनी होती है।

क़ैदी—राजस्थानी भी तो बाँके जवान होते है, गोरे और सुडौल।

साथी—क्या यह चित्र पसन्द आ गया ?

क़ैदी—कवि कविता पढ रहा है, सुरम्य उद्यान में केसर महक रही है। भला, इस दृश्य को कौन पसन्द नही करेगा। काश, मै इस बैरक की दीवार को तोड सकती, तो इस साथी के छालो पर केसर का लेप अवश्य करती ?

साथी—खूब ! पर केसर की क्यारी, यह तो बताओ आप इस जजाल मे कैसे आ फँसी ?

क़ैदी—दुर्भाग्य से, एक प्रेमी के जीवन को बचाने के अपराध मे। डरना नही साथी, मै एक खून के अपराव मे जेल काट रही हूँ। पर कल्पना के सुनहले स्वप्नो में रमने वाले कविराज, आप इस जेल के सीखचो में तड़फने कैसे आ टपके ?

साथी—भूल से समझ बैठा था कि आज़ादी मिल गई। विचार-स्वतत्रता और सत्य की बेडियाँ काट कर गरीबों की आवाज़ बुलन्द करने लगा। हड़ताले हुईं, मिल ठप्प

थी, रेलो के चक्के जाम हो गए और जनता की बुलन्द आवाज़ से आकाश फटने लगा। अवसरवादी सफेदपोश घबरा उठे, उनकी कुर्सियाँ उलटने लगी और मोटे पेट का पानी सूख गया। बस, फिर क्या था, अंग्रेजों का-सा दमन-चक्र चला, विचार-स्वतन्त्रता का गला घोट दिया गया और सत्य के हाथो में हथकड़ियाँ और पैरो में बेड़ियाँ डाल दी गईं। डरना नही कैंदी, आज मैं एक भयकर राजद्रोही हूँ। हाँ, पर आपने आज तक यह नही बताया कि आपका नाम और ग्राम क्या है? आप शहरी है या देहाती?

क़ैदी—यह सब कुछ पूछ कर आप क्या करेंगे? दो दिन का रैन-बसेरा है। कभी हम भी स्वच्छन्द पक्षी की तरह खुले आकाश में फिर से उडने लगेगे। बहुत दूर—एक दूसरे से बहुत दूर।

साथी—कैंदी, क्षमा करना, मैं कुछ और ही समझ बैठा था।

[सहसा साथी की बैरक का ताला खुलता है और जेलर मय जमादार और सन्तरी के बैरक में प्रवेश करता है। उनके साथ एक तेज लालटेन है। साथी अचंभा करके मूर्ति-सा खड़ा रहता है और चकित होकर जेलर की ओर देखता है]।

जेलर—क्यो हज़रत, क्या जेल में भी प्लॉट और षडयन्त्र चल रहे है? आप इस खूनी स्त्री के साथ जेल तोडना चाहते है? जानते हो, ऐसे षडयन्त्रो की यहाँ क्या

इनाम मिलती है? दो दर्जन भीगी हुई बेंत! वह भी आधी रात मे। आइए, तशरीफ लाइए। जमादार, इस राजद्रोही को नं० ५ की बैरक मे बन्द कर दो।

(पास की कोठरी से एक दर्दभरी पुकार उठती है)

क़ैदी—जेलर, तुम साथी को कहाँ ले जा रहे हो? भगवान् के नाम पर साथी को यहाँ से न ले जाओ, जेलर!

जेलर—चुप रहो रमा, यह खाला का घर नही है। जानती हो, इसका नाम जेल है, जेल।

साथी—रमा, दो दिन का रैन-बसेरा है...विदा ... चलो जमादार, किधर ले चलते हो? (जमादार के साथ उदास साथी प्रस्थान करता है, उधर पास की बैरक से एक चीख के साथ भयंकर आर्तनाद और धमाका सुनाई पड़ता है। जेलर क़ैदी की बैरक में प्रवेशकर स्तम्भित रह जाता है। क़ैदी बेहोश पड़ी है और उसके सर से खून बह रहा है)।

जेलर—ओह, रमा, मुझे क्या मालूम कि बात यहाँ तक बढ चुकी है? सन्तरी, भगो, डाक्टर को तुरत लाओ (उदास जेलर क़ैदी के सर को अपनी गोद में रखकर अपने हाथो से खून रोकते हैं)।

पटाक्षेप

हृदय-परिवर्तन

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१ स्थानिक
२ आचार्य
३ महाभिक्षु
४ अशोक
५ (सब)

हृदय-परिवर्तन

प्रथम दृश्य

(स्थान—बौद्ध मठ)।

स्थानिक—मठवासियो की सख्या प्रतिदिन वढती जा रही है, महाभिक्षु!

आचार्य—यह तो वडे हर्ष की वात है। जितनी सख्या वढेगी उतना ही मानवता की सेवा करने का हमें पुण्य अवसर प्राप्त होगा।

स्थानिक—किन्तु (रुक जाता है)

आचार्य—हाँ, किन्तु क्या? ठहर क्यो गये स्थानिक। निरापद भिक्षु को भावी आशकाओ से क्षुव्व नही होना चाहिये।

स्थानिक—कलिंग के परास्त नरेश के साथ आज प्राय २,००० व्यक्तियो का मठ में प्रवेश हुआ है। उन्हें भोजन कहाँ से दिया जावे?

आचार्य—क्यो? क्या सुरक्षित अन्नकोष ममाप्त हो गया?

स्थानिक—जी हाँ, यही नही, हमारे मठ में आने वाले २०० अन्न दानो को मार्ग में ही दस्युओ ने लूट लिया है।

महाभिक्षु—अस्तु। तुम जाओ। मैं इस समस्या को हल करने के उपाय को सोचने के लिये एकान्त चाहता हूँ। (स्थानिक का बाहर जाना)

(बाहर घोड़ों की टापों का स्वर और जनरव) 'जला दो इस आम्रवन को, नष्ट कर दो इस मठ को, पकड़ लो कलिंग नरेश को'—

(सैनिक महाभिक्षु को घसीटकर मठद्वार पर ले जाते हैं)।

अशोक—हमारे परास्त शत्रु कलिंग नरेश को लौटा दो भिक्षु! उन्हें तुम्हारे मठ में शरण मिली है।

महाभिक्षु—बौद्धिसत्व किसी को शत्रु नहीं मानता और न किसी का इसलिये स्वागत करता कि वह नरेश है। उसका तो आराध्य और सेव्य है केवल मानव।

अशोक—बड़े प्रगल्भ हो भिक्षु...।

महाभिक्षु—यह तुम्हारा भ्रम है मानव।

अशोक—जानते हो? तुम्हारे सम्मुख कौन खड़ा है और राजकीय नियमों के उलघन करने का क्या परिणाम होता है?

महाभिक्षु—(हँसकर) मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे सम्मुख एक महाभाग खड़ा है। एक ऐसा महाभाग! जिसके शस्त्रों के प्रहार ने भिक्षुओं को संतप्त मानवों की सेवा करने का पावन अवसर प्रदान किया है। मैं यह भी जानता हूँ सैनिक! कि राजकीय नियमों के उलघन का

परिणाम है मृत्यु। किन्तु जानते हो सैनिक! भिक्षु मृत्यु में विश्वास नही करता। अमरत्व ही उसका आराध्य है।

अशोक—मै यह प्रस्ताव सुनने नही आया। लौटा, मुझे मेरा शत्रु कलिंग नरेश।

महाभिक्षु—यह असम्भव है।

अशोक—मै तुम्हारे मठ को भस्मिभूत कर दूंगा।

महाभिक्षु—तुम्हारे जैसा दुर्बल आत्मा वाला आदमी ऐसा नही कर सकेगा।

एक और सैनिक—अरे! मूर्ख! क्या बकता है? चक्रवर्ती सम्राट अशोक तुमसे बातें कर रहे है।

महाभिक्षु—यह तो और भी अच्छा है(कुछ देर सोच कर) अच्छा! ठहरो, मैं तुम्हे समस्त मठवासियो के दर्शन कराता हूँ। स्वय देख लो कि क्या कोई अत्र भी तुम्हारा शत्रु है और कोई नरेश भी यहाँ रहता है?

अशोक—हमे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है।

महाभिक्षु—मुख्य स्थानिक! अशोक को मठवासियो के दर्शन कराओ।

स्थानिक—जो आज्ञा गुरुदेव!

(परदा उठता है)

महाभिक्षु—(कुछ क्षत-विक्षत शिशुओ की ओर इशारा करके) देखो अशोक, देखो, इन क्षतविक्षत बालको को।

इन्हे हमारे भिक्षुओ ने रणक्षेत्र से प्राप्त किया है। इन भोले-भाले बालको की माताओ के स्तनो को तुम्हारे निर्भय सैनिकों ने काट डाला, उन्हें नग्न कर उन पर अत्याचार किया और फिर उन माताओ की सतृष्ण आँखो के सामने उनके हृदय के ुकड़े इन वालको को बुरी तरह घायल कर फेंक दिया। इन भोले-भाले वालको की डबडबाई आँखे तुमसे पूछ रही हे अशोक ! कि हमने तुम्हारा क्या विगाड़ा था ? क्या हम तुम्हारे शत्रु है ?

अशोक—(आतुर होकर) वस, वस, रहने दो आगे वढ़ो।

महाभिक्षु—ये है कलिंग देश की कुल वधुएँ। तुम्हारी क्रूरता ने इनके माँग का सिंदूर सदा के लिये पोछ डाला। ये कलियाँ विकसित होने से पूर्व ही कुचल दी गईं। इनके हृदय की भावनाओ को तृप्त होने से पहले ही मर्दन कर डाला गया। इनकी सुनहली कल्पनाएँ सदा के लिए ध्वस्त हो गईं। सुनो ! इनके मूक हृदय का चीत्कार। सुना तुमने ! वह कह रहा है—अरे आततायी तूने हमारे सर्वस्व पर डाका डाला है। परन्तु स्मरण रख, हम भारतीय ललनाओ के हृदय की वेदनाओ की ज्वाला अत्याचार की आधार-शिला पर टिके तेरे समस्त साम्राज्य को स्वाहा कर डालेगी और—

अशोक—आगे वढ़ो भिक्षु ! इससे आगे मैं नही सुनना चाहता।

महाभिक्षु—ये हैं तुम्हारी साम्राज्य लिप्सा के शिकार कलिंग निवासी! इनके कांपते हुए ओठो की ओर देखो। इनकी भृकुटि पर पडी हुई रेखाओ के अध्ययन करने का प्रयत्न करो।

ये शासक है। ये कृषक है। वे हैं व्यवसायी, कलाकार और साहित्यकार। ये कांपते हुए होठ, भृकुटि पर पडी हुई रेखाएँ इनके हृदय की क्षुब्ध भावनाओ का प्रकाशन हैं। ये कह रही है अरे! साम्राज्य लिप्सु! तुझे देश की शाति और व्यवस्था नष्ट करने मे क्या सुख मिला? शस्यश्यामला वसुन्धरा पर लहलहाते हुए खेतो को नष्ट करने में तुझे कौनसा गौरव प्राप्त हुआ? देश के वाणिज्य और व्यवसाय को नष्ट कर दरिद्रता को बढाने मे तुझे कौनसा यश मिला। मूर्ख! युग-युग से सचित सभ्यता, सस्कृति और साहित्य को नष्ट करने का तुझे क्या अधिकार था? इन्हे नष्ट कर बर्बरता को उत्पन्न करने मे क्या तुझे शाति मिलती है? आततायी! अन्याई! बर्बर दस्यु! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!

अशोक—ओह! क्षमा करो महाभिक्षु मै वस्तुत आततायी, अन्याई और हिंसक दस्यु हूँ! मुझे धिक्कार है। मैने बहुत बडा पाप किया है। मै इसका प्रायश्चित करूँगा, महाभिक्षु! अवश्य प्रायश्चित करूँगा।

माताओ! बहनो! भाइयो भारत के भावी नाग-

रिकों ! मुझे क्षमा करो। मैं भूला हुआ था। अहो ! मैंने तुम्हारे साथ कितना भयंकर अत्याचार किया है ?

(अपने हाथ से शस्त्र फेंक कर)

मुझे तुम्हारी आवश्यकता नही ? मुझे ऐसे साम्राज्य की लालसा नहीं, जिसकी नीव मानव के त्राण और हिंसा पर हो। मुझे उस समय तक शांति नही जब तक कि मैं भारत की खोई हुई विश्व कल्याणमयी संस्कृति को पुनर्जीवित न कर दूं। अहिंसा और प्रेम का संदेश द्वेष और वैमनस्य सतप्त विश्व में न फैला दूं। बोधिसत्व ! कलिंग-निवासियों ! मैं शपथपूर्वक आपके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे मै भी एक भिक्षु की भांति देश की गली-गली और कूंचे-कूंचे मे घूम कर विश्व के वायुमडल को प्रेम, अहिंसा, सत्य, और सेवा की पवित्र भावनाओं से भरने का प्रयत्न करूंगा। प्रेम मेरा साम्राज्य होगा, विश्व कुटुम्ववत् ।

महाभिक्षु—अशोक, तुम धन्य हो।

अशोक—(अपने राजकीय वस्त्र उतारकर) मुझे-दीक्षा दो बोधिसत्व ! (भँगवा वस्त्र पहनाये जाते हैं)

महाभिक्षु—बोलो, संघं शरणं गच्छामि....

अशोक—सघं शरण गच्छामि।

महाभिक्षु—बुद्धं शरण गच्छामि।

अशोक—बुद्धं शरणं गच्छामि।

महाभिक्षु—धर्मं शरणं गच्छामि।

अशोक—धर्म शरण गच्छामि।

महाभिक्षु—तुम अपने सकल्प मे सफल हो नवदीक्षित भिक्षु! यही मेरा आशीर्वाद है।

अशोक—(प्रार्थना करते हुए धीरे-धीरे जाता है)

तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृत गमय।
असतो मा सद गमय।

(जय-जयकार)

सब—प्रिय दर्शिन अशोक की जय!
महाभिक्षु अशोक की जय!!
अहिंसा और प्रेम अमर है।

(पटाक्षेप)